ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अप्रैल २०१८

Date of Printing = 05-04-18
प्रकाशन दिनांक= 05-04-18

वर्ष ४७ : अङ्क ६
दयानन्दाब्द : १९४
विक्रम-संवत् : बैसाख, २०७४-२०७५
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११९

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- इतिहास का ठुकराया हीरा..... २
- वेदोपदेश ३
- प्रमाणों की संख्या ४
- लेनिनवाद बड़ा अथवा राष्ट्रवाद ८
- मूर्ति क्यों तोड़ दी? ११
- हिन्दू धर्म में प्रचलित.... १६
- पाकिस्तान दिवस.... १७
- बचाइए ! विवाह संस्कार.... १८
- वर्ष का नया प्रथम दिन..... २१
- श्रद्धया देयम... २४
- अमरीकी शासन २६

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

इतिहास का ठुकराया हीरा- वीर छत्रपति शम्भा जी

(डॉ. विवेक आर्य, मो0ः-०८०७६६८५५१७)

वीर शिवाजी के पुत्र वीर शम्भा जी को कुछ इतिहासकार अयोग्य आदि की संज्ञा देकर बदनाम करते हैं। जबकि सत्य ये है कि अगर वीर शम्भा जी कायर होते, तो वे औरंगजेब की दासता स्वीकार कर इस्लाम ग्रहण कर लेते। वह न केवल अपने प्राणों की रक्षा कर लेते, अपितु अपने राज्य को भी बचा लेते। वीर शम्भा जी का जन्म १४ मई १६५७ को हुआ था। आप वीर शिवाजी के साथ अल्पायु में औरंगजेब की कैद में आगरे के किले में बंद भी रहे थे। आपने १ मार्च १६८९ को वीरगति प्राप्त की थी। इस लेख में वीर शम्भाजी जी के उस महान और प्रेरणादायक जीवन के हमें दर्शन होते हैं, जिसका वर्णन इतिहासकार प्रायः नहीं करते।

औरंगजेब के जासूसों ने सूचना दी कि शम्भा जी इस समय अपने पांच-दस सैनिकों के साथ वाराद्वारी से रायगढ़ की ओर जा रहे हैं। बीजापुर और गोलकुंडा की विजय में औरंगजेब को शेख निजाम के नाम से एक सरदार भी मिला, जिसे उसने मुकर्रब की उपाधि से नवाजा था। मुकर्रब अत्यंत क्रूर और मतान्ध था। शम्भा जी के विषय में सूचना मिलते ही उसकी बांछे खिल उठीं। वह दौड़ पड़ा रायगढ़ की ओर। शम्भा जी अपने मित्र कवि कलश के साथ इस समय संगमेश्वर पहुँच चुके थे। वह एक बाड़ी में बैठे थे कि उन्होंने देखा कवि कलश भागे चले आ रहे हैं और उनके हाथ से रक्त बह रहा है। कलश ने शम्भा जी से कुछ भी नहीं बोला। बल्कि उनका हाथ पकड़कर उन्हें खींचते हुए बाड़ी के तलघर में ले गए। परन्तु उन्हें तलघर में घुसते हुए मुकर्रब खान के पुत्र ने देख लिया था। शीघ्र ही मराठा रणबांकुरों को बन्दी बना लिया गया। शम्भा जी व कवि कलश को लोहे की जंजीरों में जकड़ कर मुकर्रब खान के सामने लाया गया। वह उन्हें देखकर खुशी से नाच उठा। दोनों वीरों को बोरों के समान हाथी पर लादकर मुस्लिम सेना बादशाह औरंगजेब की छावनी की ओर चल पड़ी। औरंगजेब को जब यह समाचार मिला, तो वह खुशी से झूम उठा। उसने चार मील दूरी पर उन शाही कैदियों को रुकवाया। वहां शम्भा जी और कवि कलश को रंग- बिरंगे कपड़े और विदूषकों जैसी घुंघरूदार लम्बी टोपी पहनाई गयी। फिर उन्हें ऊंट पर बैठा कर गाजे- बाजे के साथ औरंगजेब की छावनी पर लाया गया। औरंगजेब ने बड़े ही अपशब्दों में उनका स्वागत किया। शम्भा जी के नेत्रों से अग्नि निकल रही थी, परन्तु वह शांत रहे। उन्हें बंदीग्रह भेज दिया गया। औरंगजेब ने शम्भा जी का वध करने से पहले उन्हें इस्लाम कबूल करने का न्योता देने के लिए रूहल्ला खान को भेजा। नर केसरी लोहे के सींखचों में बंद था। कल तक जो मराठों का सम्राट था। आज उसकी दशा देखकर करुणा को भी दया आ जाये। फटे हुए चिथड़ों में लिप्त हुआ उनका शरीर मिट्टी में पड़े हुए स्वर्ण के समान हो गया था। उन्हें स्वर्ग में खड़े हुए छत्रपति शिवाजी टकटकी बांधे हुए देख रहे थे। पिताजी, पिताजी वे चिल्ला उठे- मैं आपका पुत्र हूँ। आप निश्चिन्त रहिये। मैं मर जाऊँगा लेकिन....।

लेकिन क्या शम्भा जी.... रूहल्ला खान ने एक ओर से प्रकट होते हुए कहा।

तुम मरने से बच सकते हो, शम्भा जी। परन्तु एक शर्त पर।

शम्भा जी ने उत्तर दिया मैं उन शर्तों को सुनना ही नहीं चाहता। शिवाजी का पुत्र मरने से कब डरता है।

लेकिन जिस प्रकार तुम्हारी मौत यहाँ होगी, उसे देखकर तो खुद मौत भी थर्रा उठेगी शम्भा जी- रूहल्ला खान ने कहा। कोई चिंता नहीं, उस जैसी मौत भी हम हिन्दुओं को नहीं डरा सकती। संभव है कि तुम जैसे कायर ही उससे डर जाते हो। शम्भा जी ने उत्तर दिया।

शेष पृष्ठ १५ पर

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश

विद्वानों के संग से सब मनुष्य ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के तुल्य प्रशंसनीय वाणी, प्राण आदि अर्थात् सत्तरह तत्वों से युक्त लिङ्ग शरीर सबल स्वस्थ और समर्थ बनायें।

दध्यङ्ङाथर्वणः ऋषिः। अग्निः (विद्वान्) देवता। पङ्क्तिः छन्दः। पञ्चमः स्वरः।।

अथ विद्वत्सङ्गेन किञ्जायत इत्याह।।

इस अध्याय के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के सङ्ग से क्या होता है, इस विषय को कहते हैं।

ओ३म् ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये।
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ।। यजु० ३६/१।

पदार्थः **(ऋचम्)** प्रशंसनीयम् ऋग्वेदम्। **(वाचम्)** वाणीम् **(प्रपद्ये)** प्राप्नुयाम्। **(मनः)** मननात्मकं चित्तम् **(यजुः)** यजुर्वेदम् **(प्रपद्ये)** **(साम)** सामवेदम् **(प्राणम्)** **(प्रपद्ये)** **(चक्षु)** चष्टे पश्यति येन तत् (श्रोत्रम्) श्रणोति येन तत् **(प्र पद्ये)** **(वा गौजो)** वाक् मानसं बलम् **(सह)** **(ओजः)** शारीरं बलम् **(मयि)** आत्मनि **(प्राण-अपानौ)** प्राणश्चाऽपानश्च तावुच्छवासनिःश्वासौ।

सपदार्थान्वयः हे मनुष्याः। यथा मयि **(प्राणापानौ)** प्राणश्चाऽपानश्च तावुच्छवासनिःश्वासौ दृढ़ौ भवेतां मम वाणी **(ओजः)** मानसं बलम् **(प्र पद्ये)** प्राप्नुयात् तथा तया ताभ्यां च सह अहम् **(ओजः)** शारीरं बलम् प्राप्नुयाम् **(ऋचम्)** प्रशंसनीयम् ऋग्वेदं **(वाचं)** वाणीम् **(प्रपद्ये)** प्राप्नुयाम् **(मनः)** मननात्मकं चित्तम् **(यजुः)** यजुर्वेदम् **(प्रपद्ये)** प्राप्नुयाम् **(साम)** सामवेदं **(प्राणं)** **(प्रपद्ये)** प्राप्नुयाम्। चक्षुः चष्टे = पश्यति येन तत् **(श्रोत्रं)** ऋणोति येन तत् **(प्रपद्ये)** प्राप्नुयाम् तथा यूयमेतानि प्राप्नुत।।

भाषार्थः हे मनुष्यो! जैसे **(मयि)** मुझ में **(प्राणापानौ)** प्राण=उच्छवास, अपान=निश्वास दृढ़ हैं, मेरी **(वाक्)** वाणी **(ओजः)** मानसिक बल को प्राप्त करती है, उस वाणी और उन प्राण-अपान से मैं **(ओजः)** शारीरिक बल को प्राप्त करता हूँ **(ऋचम्)** प्रशंसनीय ऋग्देव की **(वाचम्)** वाणी को **(प्रपद्ये)** प्राप्त करता हूं। **(मनः)** मननात्मक चित्त रूप **(यजुः)** यजुर्वेद को **(प्रपद्ये)** प्राप्त करता हूँ **(साम)** सामवेद रुप **(प्राणम्)** प्राण को **(प्रपद्ये)** प्राप्त करता हूँ, वैसे तुम इन्हें प्राप्त करो।

भावार्थः अत्र वाचक लुप्तोपमालङ्कारः। हे विद्वांसो! युष्मत्सङ्गेन मम ऋागिव प्रशसंनीयावाग् यजुरिव मनः साम इव प्राणः सप्तदश तत्वात्मकं लिङ्गं शरीरं च स्वस्थं निरूपद्रवं समर्थं भवतु।

भावार्थः इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे विद्वान् लोगो! आपके संग से मेरी ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसनीय वाणी, यजुर्वेद के तुल्य मन, साम के तुल्य प्राण और सतरह तत्वों से युक्त लिङ्ग शरीर स्वस्थ, उपद्रव रहित एवं समर्थ हो।

(''दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर'' से उद्धृत,
व्याख्याता स्मृतिशेष श्री आचार्य सुदर्शनदेव)

प्रमाणों की संख्या

(उत्तरा नेरूर्कर,मो0:-९८४५०५८३१०)

भारतीय चिन्तन में सत्य की महत्ता की पुनः पुनः दोहराया गया है। वेद भी आचरण में सत्य को सर्वोपरि रखतें हैं। सत्य के बिना आध्यात्मिक लक्ष्य तो क्या, लौकिक लक्ष्य भी प्राप्त करने कठिन हैं। परन्तु सत्य का निर्धारण सर्वदा सरल नहीं होता। इसलिए दर्शनशास्त्रों में, विशेषकर न्यायदर्शन में, प्रमाणों को परिभाषित किया गया है और उनके प्रयोग द्वारा ही अपने मत का स्थापन्न किया गया है। परन्तु, विभिन्न दर्शनों में और उनकी टीकाओं में, और इस कारण से उनके मतावलम्बियों में, प्रमाणों की संख्या में कुछ भेद पाया जाता है। कोई तीन प्रमाण मानते हैं, तो कोई चार। आठ तक यह संख्या पाई जाती है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने कालजयी ग्रन्थ, सत्यार्थ प्रकाश, में आठ प्रमाण ही गिनाएं हैं, परन्तु उनके कम होने को भी स्वीकार किया गया है। इस भेद के क्या कारण हैं? क्या दर्शनकारों में कोई मतभेद था? यदि था, तो क्यों? यदि नहीं, तो उनके वचनों में भेद क्यों दिखता है? क्या कुछ प्रमाण सही हैं और कुछ गलत? या फिर क्या कम प्रमाण लेना भूल है? मैं इन सब प्रश्नों पर चर्चा इस लेख में प्रस्तुत कर रही हूँ।

पहले हम आठ प्रमाण का पुनरावलोकन कर लेते हैं-

१) <u>प्रत्यक्ष</u> - इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।। न्याय० १।१।४।।-

अर्थात् वह ज्ञान जो इन्द्रियों से उत्पन्न हो, जहां कोई बाधा या संशय न हो, केवल निश्चय हो, वह प्रत्यक्ष कहलाता है।

२) <u>अनुमान</u> - अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टञ्च ।। न्याय० १।१।५।। -

अर्थात् पहले प्रत्यक्ष कर लेने के बाद, (किसी अदृष्ट वस्तु के विषय में निष्कर्ष निकालने को) अनुमान कहते हैं। वस्तुतः यह कार्य-कारण सम्बन्ध है, जहां हम अनैकान्तिकता न हो, जिसे लोजिक या रीजनिंग कहा जाता है। सो, यह लौकिक भाषा वाला अनुमान नहीं है, जहां हम अनिश्चित तथ्य को अनुमान कहते हैं। अनुमान ३ प्रकार का होता है-

क) <u>पूर्ववत्</u> - कारण को जानकर, कार्य को जान लेना।

ख) <u>शेषवत्</u> - कार्य से कारण को जानना।

ग) <u>सामान्यतोदृष्ट</u> - यह दो वस्तुओं के बीच में वह सम्बन्ध है, जो कार्य-कारण का तो नहीं है, परन्तु सामान्य रूप से पाया जाता है। इसे हम कोमनसेंस के समान कोमनलोजिक भी कह सकते हैं।

३) <u>उपमान</u> - प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्।। न्याय० १।१।६।। -

प्रत्यक्ष की हुई वस्तु के किसी प्रसिद्ध धर्म की उपमा देकर, किसी दूसरी वस्तु को जानना। पुनः, प्रमाण की श्रेणी में आने के लिए, उपमा से निश्चय उत्पन्न होना चाहिए, जैसे- जिस प्रकार सूर्य है, उसी प्रकार रात को आकाश में दिखने वाले अन्य तारे भी सूर्य हैं।

४) <u>शब्द</u> - आप्तोपदेशः शब्दः।।

न्याय० १।१।७।। - जो आप्त, अर्थात् जानने वाले और विश्वसनीय व्यक्ति के उपदेश से जानना होता है।

शब्द दो प्रकार के हो सकते हैं-

क) <u>दृष्ट</u> - प्रत्यक्ष किया हुआ।

ख) <u>अदृष्ट</u> - जो प्रत्यक्ष करना असम्भव है। जैसे - कर्म-फल व्यवस्था।

५) <u>ऐतिह्य</u> - किसी ऐतिहासिक घटना का विवरण सुनकर जानना, जिसका बताने वाला पुनः जानकार व विश्वसनीय हो।

६) <u>अर्थापत्ति</u> - कार्य-कारण सम्बन्ध जानकर, एक

से दूसरे को जानना।

७) **<u>सम्भव</u>-** सृष्टिक्रमानुसार किसी तथ्य को सत्य समझना, अन्यथा मिथ्या।

८) **<u>अभाव</u> -** किसी वस्तु के प्रत्यक्ष या अनुमानित न होने से उसका अभाव जानना।

महर्षि दयानन्द ने ये आठों प्रमाण गिनाए, फिर अन्त में कहा, ''ये आठ प्रमाण हैं। इनमें से जो शब्द में ऐतिह्य, और अनुमान में अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव की गणना करें, तो चार प्रमाण रह जाते हैं।'' यह न्यायदर्शन का ही मत है-

शब्द ऐतिह्यार्थन्तर्भावादनुमाने-अर्थापत्ति-सम्भवाभावानर्थान्तरभावाच्चाप्रतिषेधः ।।

न्याय० २।२।२।।

यह किस प्रकार है, यह इनकी परिभषाओं से स्पष्ट ही है। तथापि ऊपर हम देख सकते हैं कि चारों को प्रमाण रूप में ग्रहण करने में काई बाधा नहीं है- चारों ही निश्चयात्मक हैं। कोई भी प्रविभाग अपने विभाग के समझने में स्पष्टता लाता है। इसलिए, इन प्रविभगों के प्रयोग से यदि स्पष्टता आती है, तो उसमें कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु, अनुमान के जो पूर्व प्रविभाग दिए हुए हैं, उनसे अर्थापत्ति का मेल नहीं है। इसलिए जहां पूर्ववत् आदि प्रविभागों का ग्रहण किया जाए, वहां अर्थापत्ति आदि का नहीं किया जाना चाहिए, और उसका उल्टा भी।

ऐसा बताया जाता है कि ये अन्तिम चार प्रमाण मीमांसक, वेदान्ती ओर पौराणिकों के द्वारा प्रयोग में लाए जाते हैं। दर्शनों में तो पूर्व ४ का ही ग्रहण प्राप्त होता है।

तथापि, दर्शनों में भी अन्तर पाए जाते हैं। न्यायदर्शन में चारों प्रमाण परिभाषित हैं, जैसा हमने उपर देखा। इसके विपरीत योगदर्शन में ३ प्रमाण गिनाए गए हैं -

प्रत्यक्षनुमानागमः प्रमाणानि ।।१।७।। - अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम प्रमाण हैं। इसके आगे योगदर्शन ने इनकी कोई परिभाषा नहीं दी है। सांख्य ने भी इन्हीं तीन प्रमाणों को मान्यता दी है और उनको परिभाषित भी किया है, यथा-

*** प्रमा तत्साधकतमं यत् तत् त्रिविधं प्रमाणम् ।।१।५२।।-** विशेष ज्ञान अर्थात् प्रमा के लिए सबसे साधक जो हैं, वे तीन प्रकार के प्रमाण हैं। **तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः ।।१।५३-** उन तीन प्रकार के प्रमाणों की सिद्धि से सब वस्तुओं की सिद्धि हो जाती है, इसलिए तीन से अधिक मानने का कोई कारण नहीं है।

*** यत् सम्बद्धं सत् तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम् ।।१।५४।।-** जो वस्तु से सम्बद्ध होकर उसके आकार का होने वाला विशेष ज्ञान है, वह प्रत्यक्ष कहलाता है। हम देख सकते हैं कि न्यायदर्शन की परिभाषा अधिक स्पष्ट थी।

*** प्रतिबन्धदृशः प्रतिबद्धज्ञानम्-अनुमानम् ।।१।६५।।-** प्रतिबन्ध को देखकर, प्रतिबद्ध का ज्ञान अनुमान कहलाता है। पुनः, यह परिभाषा न्याय से कम स्पष्ट लगती है।

*** आप्तोदेशः शब्दः ।।१।६६।। -** यह तो न्याय के तुल्य ही वाक्य है।

*** सामान्यतोदृष्टादुभयसिद्धिः ।।१।६८।।-** सामान्यतोदृष्ट अनुमान से दोनों प्रकृति व पुरुष की सिद्धि हो जाती है। अर्थात् अनुमान का प्रविभाग 'सामान्यतोदृष्ट' कपिल मुनि को मान्य है। इससे प्रतीत होता है कि-

१) उनको गौतम के बताए अन्य प्रविभाग भी मान्य होंगे।

२) उनको जो-जो प्रमाण मान्य हैं, उन सबको उन्होंने पूर्णतया नहीं परिभाषित किया है।

अन्य दर्शनों- वैशेषिक, पूर्व- व उत्तर-मीमांसा में प्रमाणों के उल्लेख तो मिलते हैं, परन्तु कोई बहुत स्पष्ट गिनती अथवा परिभाषा नहीं प्राप्त होती है।

वैशेषिक कहता है-

*** आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम् ।।९।१।११।। -**

अर्थात् आत्मा में आत्मा और मन के संयोगविशेष से आत्मा विषय का प्रत्यक्ष करता है। सो, यहां एक स्तर गहरा विवरण है, जहां आत्मा और मन के सम्बन्ध को दर्शाया गया है, और शरीर से आत्मा तक ज्ञान पहुंचने

की बात है। यह आत्मप्रत्यक्ष तो सभी ज्ञानों अथवा प्रमाणों में सामान्य है, केवल प्रत्यक्ष में ही नहीं, और यहां प्रत्यक्ष प्रमाण विषय की चर्चा नहीं हो रही है।

*** यज्ञदत्त इति सन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद्दृष्टं लिङ्गं न विद्यते।।३।२।६।।-** यज्ञदत्त नाम के व्यक्ति का इन्द्रियों के सन्निकर्ष होने पर (=प्रत्यक्ष होने पर), आत्मा के प्रत्यक्ष का अभाव होने से, यह मानना पड़ता है कि आत्मा का कोई दृष्ट (=प्रत्यक्ष हो सकने वाला) चिह्न नहीं है। जबकि यहां आत्मा के प्रत्यक्षत्व की चर्चा है, परन्तु 'सन्निकर्ष' व 'प्रत्यक्ष' शब्द के प्रयोग से हम समझ सकते हैं कि महिर्षि कणाद को प्रत्यक्ष प्रमाण उसी प्रमकर मान्य है, जैसा कि गौतम मुनि ने न्याय में निरूपित किया था।

*** सामान्यतोदृष्टाच्चाविशेषः ।।३।२।७।। -** ऊपर के आत्मा की परीक्षा के प्रकरण में ही, कणाद कहते हैं, ''और सामान्यतोदृष्ट (अनुमान) से भी आत्मा अविशेष है।'' अर्थात् अनुमान प्रमाण और उसके विभिन्न प्रविभाग जो गौतम ने दिए थे, वे कणाद को भी मान्य प्रतीत होते हैं।

*** तस्मादागमिकः ।।३।२।८।।-** पुनः उपर्युक्त चर्चा को आगे बढाते हुए, कणाद कहते हैं, '' इसलिए आत्मा की सिद्धि आगम या शब्द प्रमाण से है। इस प्रकार कणाद शब्द प्रमाण के भी पक्षधर जान पड़े।

इस प्रकार, वैशेषिक में पुनः हम तीन प्रमाणों का स्पष्टतः उल्लेख पाते है।

पूर्वमीमांसा में महर्षि जैमिनी लिखते हैं-

*** सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत्प्रत्यक्षम् ।।१।१।४।।-** विद्यमान वस्तु के साथ इन्द्रियों के जुड़ने से आत्मा में जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह प्रत्यक्ष होता है। यह न्याय की परिभाषा के समान ही है।

*** अपि वा कर्तृसामान्यात् प्रमाणमनुमानं स्यात् ।।१।३।२।।-** और भी, वेद को मानने वाले और स्मार्त कर्म करने वाले कर्ता के समान होने से, वे अवेदोक्त कर्म भी प्रमाण हैं, यह अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार जैमिनि अनुमान प्रमाण को भी मानते हुए दिखाई पडते हैं।

*** औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात् ।।१।१।५।।-** बादरायण मुनि के मत में वेद के शब्दों का अपने अर्थों से सम्बन्ध स्वाभाविक है, और वे स्वतः प्रमाण हैं। अतः जैमिनि ऋषि ने वेद के आगम प्रमाण होने को स्वीकार किया।

सो, पूर्वमीमांसा में भी तीन प्रमाणों का स्पष्ट उल्लेख है।

अब मीमांसा वा ब्रह्म-सूत्र को देखते हैं-

*** स्मर्यमाणमनुमानं स्यात् ।।१।२।२५।। -** स्मरण किया जा रहा अनुमान हो (=है, इस हेतु से प्रतिज्ञा सिद्ध है)। यहां महर्षि व्यास अनुमान प्रमाण को मन्तव्य बता रहे हैं।

*** श्रुतत्वाच्च।।१।१।११।।-** और श्रुति का शब्द-प्रमाण होने के कारण भी (प्रतिज्ञा सिद्ध है)। यहां शब्द-प्रमाण को अंगीकार किया गया है।

इस प्रकार ब्रह्म-सूत्र में दो प्रमाण स्पष्ट-रूप से पाए गए हैं।

तो क्या इससे यह सिद्ध हुआ कि दर्शनकार केवल निर्दिष्ट प्रमाणों को ही स्वीकारता है, अन्यों को नहीं? यह मानना तो मूर्खता होगी! जबकि मैंने उपर केवल वही सूत्र उद्धृत किए हैं, जो कि किसी विशेष प्रमाण को नाम से कहते हैं, परन्तु पूरे शास्त्र को यदि हम शोध-भाव से परखें, तो हमें सभी प्रमाण हेतु-रूप में प्राप्त हो जायेंगे, जैसे- ब्रह्मसूत्र कहता है - **न तु दृष्टान्तभावात् ।।२।१।६।।-** दृष्टान्त के अभाव से (प्रतिज्ञा असिद्ध है)। दृष्टान्त प्रत्यक्ष का ही पर्याय है। और यहां अभाव प्रमाण का भी ग्रहण हो गया। इसी ग्रन्थ में, आगे सूत्र मिलता है - **नैकस्मिनसम्भवात् ।।२।२।३३।।** - (प्रतिज्ञा) सही नहीं है, क्योंकि वह एक में सम्भव नहीं है। यहां सम्भव अनुमान भी प्राप्त हो गया। उपमान प्रमाण की तो किसी भी शास्त्र में कमी ही नहीं है। जैसे - ब्रह्मसूत्र में ही हम पाते हैं - **कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवदविरोधः ।।१।४।१०।। -** कल्पना के द्वारा उपदिष्ट होने से, जिस प्रकार मधु, आदि, प्रामाणिक माने गए, इस (प्रतिज्ञा में भी) विरोध नहीं है। सांख्य कहता है- **आद्यहेतुता**

तद्द्वारा पारम्पर्येऽप्यणुवत् ।।१।३६।। - प्रकृति आद्य हेतु सिद्ध होती है, जिस प्रकार अणु सिद्ध है। परन्तु, ऊपर हमने देखा था कि सांख्य ने उपमान प्रमाण स्वीकार ही नहीं किया था। तब वह उसका प्रयोग कैसे कर रहा है? इसी प्रकार प्रायः सभी दर्शन उपमान प्रमाण का प्रयोग करते हुए दिखते हैं, चाहे उन्होंने उसको प्रमाणों में न पढ़ा हो। ऐसा क्यों? इसको समझने के लिए सन्दर्भ देखना बहुत आवश्यक है।

योगदर्शन में, यदि हम "**प्रत्यक्षानुमानागमः प्रमाणानि (१।७)**" का सन्दर्भ देखें, तो वह चित्तवृत्तियों के वर्णन में आया है- **वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः।। प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ।।१।५,६।। -** चित्त की वृत्तियाँ ५ प्रकार की होती हैं - प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति। अर्थात् यहां सत्य के निर्धारण पर बल नहीं है। तो फिर किसका विषय है? वस्तुतः यहां चित्त के विभिन्न सोचने के प्रकारों की चर्चा हो रही है, जिसके अन्तर्गत प्रमाणों को तीन में बाँटा गया है-

१) प्रत्यक्ष - जो इन्द्रियों से सीधे-सीधे ग्रहण करते समय वृत्ति हो।

२) अनुमान - जो चित्त में, प्रत्यक्ष किए हुए के आधार पर, अन्य विषय को समझने की वृत्ति हो।

३) आगम - जो शब्दों का श्रवण करके, चित्त के विशेष भाग में उनका अर्थ करने की वृत्ति हो। इस प्रकार से समझने से, हमें यह भी समझ में आयेगा कि इस अन्तिम वृत्ति में वह वृत्ति भी सम्मिलित है जिसके द्वारा हम भाषण करते हैं, क्योंकि वह भी चित्त की एक विशेष प्रक्रिया होती है, जिसका वर्णन उच्चारण -शिक्षा के ग्रन्थों में निरूपित किया गया है। उसे यहां सम्मिलित न करें, तो वह सोचने का प्रकार छूट जायेगा! अर्थात् न्याय के समान, यहां सत्य-निर्धारण विषय नहीं है, अपितु चित्त की प्रक्रियाओं को विभाजित किया जा रहा है।

दूसरी ओर, अन्य प्रमाणों को यहां क्यों छोड दिया गया? तो उपमान प्रमाण को देखिए। उसमें किसी एक वस्तु को दिखाकर, या बताकर, अन्य का ग्रहण करवाया जाता है। सो, वह प्रत्यक्ष या शब्द और अनुमान का मिश्रण है। अन्य प्रमाणों का भी, स्वामी दयानन्द के बताए संगतिकरणानुसार, ऊपर दिए तीन प्रमाणों से सम्बद्ध चित्त-वृत्तियों में समावेश हो जाएगा। अर्थात् शब्द में ऐतिह्य, और अनुमान में अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव का समावेश हो जायेगा। इस प्रकार सभी प्रमाणों में चित्त की वृत्तियां भिन्न नहीं होंगी, अपितु बताए गए तीन प्रमाणों के समान ही होंगी। इसलिए पतञ्जलि को उनका पृथक् निर्धारण करने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

सांख्य में प्रकरण प्रमा का है, जिससे वस्तु के सत्यस्वरूप का ज्ञान होता है। तो उसमें उपमान प्रमाण का भी योगदान है, इसीलिए कपिल ने स्वयं कई विषयों को समझाने के लिए उसका प्रयोग किया है। इसलिए प्रतीत होता है कि उन्होंने उपमान को अनुमान के अन्तर्गत ही मान लिया है।

इस सब से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि, वस्तुतः, सत्य के निर्धारण के लिए न्यायदर्शन में दिए गए चार प्रमाण ही सबसे व्यापक व उपयुक्त हैं। शेष चार प्रमाण उनमें ही निहित हैं। तथापि किसी को उनके द्वारा समझने में विशेष सुविधा हो, तो वह उनका भी प्रयोग कर सकता है। कुछ दर्शनों ने केवल तीन प्रमाणों को गिना है, और उपमान प्रमाण को प्रायः नही पढ़ा है। इसका एक कारण है कि उपमान प्रमाण भी अनुमान का एक अंश माना जा सकता है। इसका दूसरा कारण है कि दर्शनकारों ने अपना-अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए, केवल उतने ही प्रमाण परिभाषित किए हैं, जिनकी उनको आवश्यकता थी। परन्तु, उनके विवेचन में हम पाते हैं कि, सत्य के निर्धारण के लिए, उन्होंने वे सभी प्रमाण प्रयोग किए हैं, जिनका उल्लेख गौतम मुनि ने किया है। रही अनुयायियों की बात कि वे कम या अधिक प्रमाणों पर क्यों बल देते हैं, तो अनुनायी अपने प्रणेता की बात सर्वदा नहीं समझ पाते। यदि वे भी उतने ही तेजस्वी होते, जितने कि उनके गुरु थे, तो उनके ग्रन्थ भी अवश्य ही लोक में प्रसिद्ध होते! इसलिए मुख्य उपदेशक के उपदेश को अवश्य सीधा पढकर समझना चाहिए। स्वामी विरजानन्द जी ने इसीलिए कहा था, **"आर्ष ग्रन्थों का ही अध्ययन करो! अन्य सब त्याज्य हैं।"**

❑❑

लेनिनवाद बड़ा अथवा राष्ट्रवाद

(धर्मपाल आर्य)

६ मार्च को त्रिपुरा में प्रदर्शकारियों ने रूसी क्रान्ति के नायक ब्लादिमीर लेनिन की प्रतिमा को खण्डित कर दिया, जिसके कारण प्रतिक्रियास्वरूप भिन्न-भिन्न स्थानों पर मूर्तियाँ खण्डित की गईं या खण्डित करने का प्रयास किया गया। मूर्ति तोड़ने की यह घटना पहली नहीं है इससे पूर्व अनेकों मूर्तियाँ तोड़ी गईं, परन्तु इतनी चर्चा और इतनी हिंसक प्रतिक्रिया या तो तब हुई थी, जब अयोध्या में एक विवादित ढांचा गिराया गया था या फिर अब १९७७ की रूसी क्रान्ति के जनक ब्लादिमीर लेनिन के बुत को गिराने से हुई। लेनिन का कभी भारतीय संस्कृति से, आध्यात्मिक व सामाजिक विरासत से गहरा सम्बन्ध रहा है, ऐसा मुझे लगता नहीं, भारत के सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, नैतिक अथवा राजनीतिक विकास में कोई योगदान भी लेनिन का नहीं रहा। तब प्रश्न उठता है कि फिर उसकी मूर्ति क्यों लगाई गई? जो जिसके दर्शन को अपनाता है, वो संगठन अथवा समूह उसको अपना आदर्श मानकर उसकी मूर्ति स्थापित करता है। हमारे देश में मार्क्सवादियों और कम्यूनिस्टों का लेनिन आदर्श है। जाहिर है उसके प्रति सम्मान के भाव को कायम रखने के लिए लेनिन की प्रतिमा स्थापित की गई। लेनिन की प्रतिमा का खण्डन केवल प्रतिमा खण्डन नहीं, अपितु लेनिनवाद का भी खण्डन है। लेनिन को सोवियत संघ में भीषण रक्तपात, नरसंहार और हिंसा का सूत्रधार माना जाता है। मेरे किसी मित्र ने मुझसे जब इस प्रकरण पर मेरी प्रतिक्रिया मांगी तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि जब लेनिन और लेनिनवाद से दूर-दूर तक अपना कोई सम्बन्ध नहीं, तो मैं उस पर अपनी प्रतिक्रिया क्यों दूँ? फिर भी मैंने उनको उनके आग्रह पर सधा हुआ उत्तर देने की कोशिश की। मैंने कहा - "जो जीवित मूर्तियों के खण्डन (नरसंहार) का दागी रहा हो, उसकी मूर्ति को खण्डित होना उतना आश्चर्य जनक नहीं, जितना कि अहिंसा, सामाजिकता और समता का सन्देश देने वाले महात्मा गान्धी, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, भीमराव अम्बेडकर और पेरियान जैसे महापुरुषों की मूर्तियों को खण्डित किया जाना आश्चर्यजनक है। लेनिन ने इस देश को क्या दिया, जो लेनिन को अपना आदर्श मानते हैं और लेनिनवाद को अपनी जीवन अथवा राजनीति की शैली मानते हैं केवल उन लोगों से पूरे राष्ट्र का तो प्रतिनिधित्व नहीं हो जाता। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मूर्तिपूजा का खण्डन करते हुए आदर्श समाज के निर्माण का प्रारूप वेदों के अनुसार समाज के सामने रखा और राष्ट्र- पूजा (राष्ट्र निर्माण) को सर्वोपरि माना। आज जो लेनिन की मूर्ति को भङ्ग होने का मातम मना रहे हैं, हिंसक प्रदर्शन कर रहे हैं तथा आन्दोलन की आड़ लेकर तोड़-फोड़ करके राष्ट्रीय सम्पत्ति को नुकसान पहुँचा रहे हैं, उन्हें मेरे इस प्रश्न का उत्तर देना चाहिए कि उनके लिए लेनिन की मूर्ति बड़ी है या राष्ट्र? पिछले महीने (मार्च) में मूर्ति के बदले मूर्ति तोड़ने का जो सिलसिला चला, उससे उपरोक्त प्रश्न हर बुद्धिजीवी और राष्ट्र के भक्त को उद्वेलित कर सकता है। लेनिन की मूर्ति भङ्ग होने की यह घटना न तो पहली घटना है और सम्भवतः अन्तिम भी नहीं है। लेनिन की मूर्ति से पूर्व अनेक मूर्तियाँ तोड़ी गईं। महमूद गजनी, बाबर, औरंगजेब जैसे कट्टरवादी मुस्लिम शासकों ने भारत में असंख्य मन्दिरों और मूर्तियों को खण्डित किया। अफगानिस्तान में तालिबान ने वहाँ बामियान प्रान्त में महात्मा बुद्ध की मूर्तियों और बौद्धमत के प्रतीकों को तोप से खण्डित कर दिया। अयोध्या में विवादित ढांचा गिराए जाने के बाद पाकिस्तान, बांग्लादेश समेत अनेक इस्लामिक राष्ट्रों

में बेरहमी से मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ा गया व हिन्दुओं का कत्लेआम किया गया। अपने देश के प्रदेश जम्मू कश्मीर में मन्दिरों व मूर्तियों के साथ- साथ हिन्दुओं के घरों में आग लगाई गई व उनको बेघर किया गया। वेद के अनुसार ईश्वर की कोई प्रतिमा (मूर्ति) नहीं होती इस दृष्टि से महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा उन द्वारा स्थापित आर्यसमाज मूर्तिपूजा को ईश्वर की पूजा नहीं मानता क्योंकि वेद में कहा गया है -

"न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः"

अर्थात् जिस ईश्वर का यश संसार में समाया हुआ है, उस परमेश्वर की कोई प्रतिमा (मूर्ति) नहीं है। इसके बावजूद आर्यसमाज किसी भी ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक पक्ष की साक्षी बनने वाली मूर्ति अथवा प्रतीकों को खण्डित करने में विश्वास नहीं करता है। लेनिन की मूर्ति, श्यामा प्रसाद मुखर्जी की मूर्ति, अम्बेडकर की मूर्ति अथवा पेरियार की मूर्ति संभव है किसी विचारधारा का प्रतिनिधित्व कर रही हो लेकिन लेनिन की प्रतिमा जिस लेनिनवाद का प्रतिनिधित्व करती है, उसमें कहीं न कहीं समग्रता व समता के भाव का अभाव ही झलकता है। लेनिन और लेनिनवाद हमारी राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व किसी भी स्थिति में नहीं कर सकता। लेनिनवाद यदि हमारे राष्ट्रवाद और समाजवाद पर हावी होता है, तो मैं इसे बिना किसी संकोच के भारत की पुरातन और सनातन सांस्कृतिक विरासत पर आक्रमण कहूँगा। जो लोग लेनिन की प्रतिमा के टूटने पर शोक में डूबे हुए हैं, उस लेनिन के लेनिनवाद से रूस को कुछ मिला होगा, उस लेनिन के लेनिनवाद से चीन को कुछ मिला होगा या फिर जो राष्ट्र उस लेनिन के लेनिनवाद को अपने जीवन का, राजनीति का आदर्श मानते हैं,उन राष्ट्रों को लेनिन के लेनिनवाद से कुछ मिला होगा। परन्तु हमारे आर्यावर्त को लेनिन के लेनिनवाद से न तो कुछ मिला है और न ही कुछ मिल सकता है। जिनके सिर पर लेनिन और लेनिनवाद का भूत सवार है, जिन्हें लेनिन का लेनिनवाद राष्ट्रवाद से बढ़कर दिखाई देता है, ऐसी मानसिकता वाले चाहे राजनेता हों, चाहे राजनीतिक दल हों, उनसे राष्ट्रीय एकता की आशा करना सर्वथा बेमानी है। ऐसे महानुभाव समाज व राष्ट्र में तथाकथित आन्दोलन की आड़ लेकर अराजकता और अव्यवस्था के सूत्रधार होते हैं अन्यथा क्या कारण था कि एक विदेशी मार्क्सवादी चिन्तक, हिंसक क्रान्ति के प्रणेता लेनिन की मूर्ति के टूटने पर भारतीय दार्शनिकों, चिन्तकों और मनीषियों की स्मृति में स्थापित मूर्तियों को खण्डित किया गया, कुछ मूर्तियों पर कालिख पोलने का कार्य किया गया, इससे अधिक लेनिनवादियों की असहिष्णुता का, संवेदनहीनता का और प्रतिशोधात्मक प्रवृत्ति का और कौन सा नमूना हो सकता है? देश की राजनीति को समय-समय पर तरह-तरह के वाद नकारात्मक रूप से प्रभावित करते रहे हैं। यद्यपि लेनिनवाद का देश की राजनीति पर प्रभाव देशीय नहीं अपितु प्रादेशिक स्तर पर ही रहा है लेकिन राष्ट्रीय मद्दों को प्रभावित करने की नकारात्मक कोशिश लेनिनवादियों की रही हैं केरल, पश्चिमी बंगाल और त्रिपुरा इस लेनिनवाद (लेनीवाद) के गढ़ माने जाते रहे हैं। लेकिन अपनी अतिवादिता के कारण आज यह वाद केवल केरल तक सिमट कर रह गया है। आर्यसमाज का हमेशा से यही मानना है कि सभी वादों (जातिवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद, वंशवाद, परिवारवाद, लेनिनवाद अथवा मार्क्सवाद) से बड़ा राष्ट्रवाद है। मजबूत और स्थिर समाज के निर्माण का सूत्र देते हुए महर्षि दयानन्द द्वारा संस्थापित आर्यसमाज के नियमों में स्पष्ट निर्देशित है- **"सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।**

सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।'' आर्यसमाज के उपरोक्त नियमों में राष्ट्रवाद की, समता और ममता पर आधारित समाजवाद की व्यापक परिभाषा की अभिव्यक्ति होती है। इस देश की राजनीति का यह दुर्भाग्य ही रहा

है कि ये लम्बे समय से कुछ देशी तो कुछ विदेशी वादों के मकड़जाल में फंसती रही है। वेद में कहा गया है कि यदि देवत्व वाले सुख भाग को प्राप्त करना चाहते हो, यदि राष्ट्र को, समाज को एकता और अखण्डता में रखना चाहते हो, तो इस आदर्श को अपने जीवन में धारण करो-

संगच्छध्वं, संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्,
देवाभागं यथापूर्वे संजानानां उपासते।

अर्थात् हे संसार के लोगो, आप राष्ट्र व समाज के हित को ध्यान में रखते हुए सत्य और न्याय की बातों को मिलकर बोलो और सत्य व न्याय के नियमों का मिलकर पालन करो तथा सत्य, न्याय के नियमों का मिलकर पालन करते हुए तुम सभी उसी सुख भाग को प्राप्त करो, जिस सुख भाग को आप सबके पूर्वजों ने सत्य, न्याय के नियमों पर एकता के सूत्र में बद्ध होते हुए चलकर प्राप्त किया था। हमारे धर्मग्रन्थ (वेद) , रामायण और महाभारत आदि ऐतिहासिक ग्रन्थ ईश्वर-भक्ति के साथ राष्ट्रभक्ति की भावना से ओत-प्रोत हैं। अथर्ववेद राजा को स्पष्ट आदेश देता है -

"ध्रुवाद्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्।
ध्रुवासः पर्वताः इमे ध्रुवो राजाविशमयम्।।
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः।
ध्रुवं ते इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्।।

अर्थात् जिस प्रकार यह द्युलोक ध्रुव (स्थिर) है, यह पृथिवी ध्रुव है, ये पर्वत ध्रुव हैं, यह अग्नि ध्रुव है ठीक इसी प्रकार राजा को एक स्थिर, अखण्ड राष्ट्र का निर्माण करना चाहिए। जिस प्रकार कभी किसी वाद को लेकर और कभी किसी वाद को मुद्दा बनाकर राष्ट्र में अराजकता फैलाकर उसे अस्थिर करने की कोशिश की जाती है, उससे तात्कालिक निहित स्वार्थो की पूर्ति तो हो सकती है लेकिन राष्ट्र को और उसकी अस्मिता को गहरा आघात पहुँचता है। लेनिन से बड़ा राष्ट्र है और लेनिनवाद से ऊँचा राष्ट्रवाद है। हम सब राष्ट्र के नव निर्माण में अपनी सामूहिक जिम्मेदारी को लेनिनवाद जैसे वादों से दुष्प्रभावित न होने दें। हम इस बात को हमेशा ध्यान में रखें कि हमारे आदर्श राष्ट्रवादी राम तथा श्रीकृष्ण हैं, हमारे आदर्श महात्मा गान्धी, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस हैं, हमारे आदर्श व प्रेरणास्रोत खुदीराम बोस, राजेन्द्र लाहिड़ी और रामप्रसाद बिस्मिल हैं, हमारे नायक ऊधमसिंह और चन्द्रशेखर आजाद हैं, हम सबके आदर्श देशभक्त राजगुरु, सुखदेव और भगतसिंह हैं, हमारे आदर्श और प्रेरणास्रोत महर्षि महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी आदि हैं और इन सबकी प्रतिमाएं हम सबके लिए इतिहास की पावन स्मृतियों का स्रोत हैं। इन सबके राष्ट्रवाद के सामने लेनिनवाद बिल्कुल फीका और बौना है। हमारे राष्ट्रवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है -

"अयं निजः परोवेति गुणनालघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।"

अर्थात् यह अपना है, और यह पराया ऐसी धारणा लघुचित्त वालों की होती है, विशाल ह्रदय वालों के लिए तो पूरी वसुधा ही परिवार की तरह है। पिछले महीने (मार्च) लेनिन की प्रतिमा के टूटने के बाद जिस प्रकार नकारात्मक प्रतिक्रिया हुई और आवश्यकता से अधिक लेनिन का गुणगान किया गया उससे कोई यह सहज अनुमान लगा सकता था कि कुछ महानुभाव लेनिन को राष्ट्र से और लेनिनवाद को राष्ट्रवाद से ऊपर सिद्ध करने की असफल कोशिश कर रहे थे। किसी का आवश्यकता से अधिक महिमा मंडन करना सत्य और न्याय के विपरीत है। अन्त में पं. लेखराम (जिनका ६ मार्च को बलिदान दिवस था) को तथा राजगुरु, सुखदेव व भगत सिंह को (जिनका २१ मार्च को बलिदान दिवस था) को अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि देता हुआ और राष्ट्रहित में उनके किए बलिदान के प्रति कोटिशः कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहना चाहता हूँ कि लेनिन से बड़ा हमारा राष्ट्र और लेनिनवाद से हमारा राष्ट्रवाद बहुत ऊँचा था, बहुत ऊँचा है और बहुत ऊँचा रहेगा।

❑❑

मूर्ति क्यों तोड़ दी?

(राजेशार्य आट्टा, मो0:-०६६६१२६१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! मार्च २०१८ में त्रिपुरा राज्य में २५ वर्ष का कम्यूनिस्ट शासन समाप्त हुआ, तो वहाँ के लोगों ने वहाँ लगी लेनिन (रूसी विचारक) की प्रतिमा भी तोड़ दी। इसकी प्रतिक्रिया में पश्चिम बंगाल में श्यामाप्रसाद मुखर्जी की प्रतिमा पर हथौड़े बरसाए गए। उधर तमिलनाडु में पेरियार की मूर्ति तोड़ी गई, तो उत्तरप्रदेश में भी डॉ. भीमराव अम्बेडकर की मूर्ति पर गुस्सा उतारा गया। किसी की मूर्ति लगाने से कोई महान नहीं हो जाता और मूर्ति तोड़ने से किसी (व्यक्ति या विचार) की हत्या नहीं होती। भारत के इतिहास में मुसलमानों ने सैकड़ों वर्ष तक हिन्दू आस्था की मूर्तियाँ तोड़ीं, पर वे बार-बार बनती रहीं आज तक बन रही हैं।

स्मृतिशेष डॉ. धर्मवीर जी ने लिखा है- "हमें यह समझना चाहिए कि केवल मूर्ति को तोड़कर मूर्तिपूजा को समाप्त नहीं कर सकते, मूर्तिपूजा क्रिया नहीं मूर्ति-पूजा विचार है। विचारों का स्थान विचार लेते हैं। वस्तुओं या मनुष्यों को तोड़ने या मारने से विचार नहीं मर जाता।"

लेनिन विदेशी विचारक था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि १६१७ में रूस की क्रान्ति के समय उसने हिंसा को प्राथमिकता दी और लाखों लोगों का नरसंहार करवाया। हो सकता है, तत्कालिक परिस्थिति में ऐसा करना रूस के लिए लाभकारी रहा हो, पर उसकी विचारधारा सार्वकालिक व सार्वभौमिक नहीं हो सकती, जो उसके नाम पर भारत में लेनिनवाद का प्रचार किया जाये। भारत में भी लेनिन के समर्थक विरोधी विचार रखने वालों की हत्या करने में भी संकोच नहीं करते। इसका उदाहरण केरल आदि राज्यों में देखा जा सकता है। यद्यपि लेनिनवादी मूर्तिपूजक नहीं हैं, पर प्रेरणा के लिए उन्होंने लेनिन की मूर्ति बनाई। त्रिपुरा में यह मूर्ति टूटी, तो भारत के कम्यूनिस्ट मातम मनाने लगे। पहली बार उनके मुख से यह सुनने को मिला कि मूर्ति तोड़ी गई, अन्यथा अभी तक तो यही कहते थे कि भारत में (मुस्लिमों द्वारा हिन्दुओं की) कोई मूर्ति नहीं तोड़ी गई।

और इसकी प्रतिक्रिया में पश्चिम बंगाल में भारत के महान देशभक्त डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की मूर्ति तोड़ी गई अर्थात् लेनिन को आदर्श मानने वालों के लिए देशभक्त की कोई कीमत नहीं है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि जब किसी सम्प्रदाय के आदर्श महापुरुष विदेशी हो जाते हैं और वह विदेशी भाषा में सोचने बोलने लगता है, तो संसार की कोई ऐसी शक्ति नहीं जो उसे अपने देश के प्रति निष्ठावान बनाये रख सके। कम्यूनिस्टों के विषय में देश इस सच्चाई को कई बार देख चुका है। १६४२ में इन लोगों ने भारत छोड़ो आन्दोलन का विरोध किया, क्योंकि तब अंग्रेज रूस (कम्यूनिस्ट) के मित्र थे और अंग्रेजों का विरोध रूस का विरोध माना गया। १६६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण किया, तो ये लोग भारतीय होकर भी चीन की जय बोल रहे थे, क्योंकि चीन कम्यूनिस्ट है।

इन लोगों के लिए भगतसिंह इसलिए आदरणीय नहीं है कि वह देशभक्त था, अपितु इसलिए आदरणीय है कि वह लेनिन का साहित्य पढ़ता था और उससे कुछ प्रभावित भी था। लेनिन की मूर्ति लगाने में बस यही तर्क देकर हमें बहकाया जाता है कि वह भगतसिंह का भी प्रेरक था। भगतसिंह तो करतारसिंह सराभा, सरदार अजीतसिंह, सूफी अम्बाप्रसाद, गुरु रामसिंह, भाई परमानन्द आदि से भी प्रेरणा पाते थे। फिर उन्हीं में से किसी की मूर्ति लगाई जा सकती थी, और नहीं तो भगत सिंह की ही लगा लेते, अन्यथा पी.सी. जोशी आदि की ही लगा लेते। समाजवाद के लिए विदेशी व्यक्ति की क्या आवश्यकता थी?

वैसे तो लेनिन या किसी की भी मूर्ति तोड़ना गलत ही है,पर लेनिन की मूर्ति तोड़ने की प्रतिक्रिया में श्यामा प्रसाद मुखर्जी की मूर्ति पर हथौड़े चलाने वाले भारतीय लेनिन भक्तों ने ऐसी प्रतिक्रिया रूस के विरुद्ध क्यों

नहीं व्यक्त की, जब यूक्रेन (रूस) में ही रूस के लोगों ने लेनिन की मूर्ति तोड़ी थी और लेनिन ग्राद का नाम बदलकर पुनः सेंट पीटर्सबर्ग रखा था, तो तथाकथित लेनिन-भक्त कहाँ चले गये थे? जब रूस ने ही लेनिन को नकार दिया, तो वह भारत का क्या लगता है? सम्भव है त्रिपुरा में लेनिन की मूर्ति तोड़ने की प्रेरणा भारत के लोगों को रूस से ही मिली हो। यद्यपि मूर्ति तोड़ना गलत था, पर उसका दण्ड श्यामा प्रसाद की मूर्ति को देना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? यदि लेनिन रूस का देशभक्त था, तो श्यामाप्रसाद मुखर्जी भारत-भक्त थे और भारत की एकता और अखण्डता के लिए संघर्ष करते हुए वे कश्मीर की जेल में शहीद हुए थे। जिस लेनिन ने भारत के लिए कुछ भी नहीं किया; जिसकी देशभक्ति को रूस ने भी नकार दिया हो, उसके लिए अपने देशभक्त का अपमान करना भारत से गद्दारी करना है। चीन ने तो कम्युनिस्ट होते हुए भी लेनिन की मूर्ति अपने देश में नहीं लगवाई।

यह तो सत्य है कि भगतसिंह और उन जैसे कई क्रांतिकारी रूस की क्रान्ति की सफलता से प्रभावित हुए थे, पर यह भी सत्य है कि बाद में भगतसिंह के साथी बटुकेश्वर दत्त, एम.एन.राय, पृथ्वीसिंह आजाद आदि ने विदेशी समाजवादी विचारधारा को छोड़ दिया था। कामरेड शचीन्द्रनाथ सान्याल ने 'बन्दी जीवन' में लिखा है- "साम्यवादी नेता गुरुमुखसिंह ने चाहा कि हमारे सच्चे साथी सरदार भगतसिंह को हम लोगों से तोड़कर अपनी संस्था में मिला लें। इस कारण गुरुमुखसिंह ने भगतसिंह जी को बहुतेरा समझाया कि तुम बंगालियों के फेर में मत पड़ो।... बहुत बहकाने पर भी भगतसिंह जी ने हम लोगों का साथ नहीं छोड़ा।" (पृ. २९५)

"मन्मथनाथ जी उस समय कम्युनिज्म के सिद्धान्त से विशेष परिचित न थे। आज कामरेड मन्मथनाथ कम्युनिज्म को जिस प्रकार समझते हैं, सम्भव है भविष्य में ठीक ऐसा ही न समझें।" (पृ. ३२१)

यही बात भगतसिंह के विषय में भी कही जा सकती है। उस समय लेनिन का नया-नया प्रभाव था और जिज्ञासु भाव के क्रान्तिकारी भगतसिंह ने लेनिन को पढ़ा, तो परिवार से प्राप्त आस्तिकता के भाव मन्द हो गये। सम्भव है यदि वे जीवित रहते, तो बाद में सामने आये लेनिन के खूनी चरित्र से भी उनका मोह भंग हो जाता। क्योंकि उनके लिए देशभक्ति प्राथमिक थी, लेनिन-भक्ति नहीं। इसी भावना के कारण उन्होंने गुरु गोविन्द सिंह, स्वामी रामतीर्थ, वीर सावरकर, पं० रामप्रसाद बिस्मिल आदि को भावभीनी श्रद्धांजलि दी। विश्वप्रेम के रूप में उन्हें भीलनी के बेर खाने वाले राम की याद आती है। आज के लेनिनवादियों की तरह वे राम के अस्तित्व को नहीं नकारते और न वीर सावरकर को 'कायर' कहते थे। भगतसिंह के विचारों में देशहित प्रथम था, पर लेनिनभक्तों ने उनके मुख्य स्वरूप को पीछे धकेलकर उन्हें लेनिनवादी 'नास्तिक' प्रचारित करने में ही सारा जोर लगाया है।

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की मूर्ति का अपमान हुआ, तो उसकी प्रतिक्रिया तमिलनाडु में दिखाई दी। वहाँ के स्थानीय लोगों द्वारा दलितोद्धार के नाम पर हिन्दुओं (मुख्यतः ब्राह्मणों) व उनके धार्मिक ग्रन्थों की कटु आलोचना करने वाले ई.वी. रामास्वामी नायकर (पेरियार) की मूर्ति तोड़ दी गई। मूर्ति तोड़ना तो गलत था, पर हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ तोड़ने वाले पेरियार की मूर्ति क्यों बनाई गई और उसके अनुयायियों द्वारा उसकी पूजा क्यों की गई? क्या वह कोई देवता था, जो चेन्नई के सबसे बड़े इलाके में उसकी मूर्ति खड़ी की गई और जो बकायदा पूजी जा रही है। यूँ तो इस मूर्तिपूजक देश में जहाँ राम कृष्ण के साथ मुस्लिम पीर मजारों की पूजा करने वाले हिन्दू भक्त हैं, वहीं साईं, श्रीराम शर्मा (गायत्री परिवार), लेखराज (ब्रह्मकुमारी), आशाराम, गुरमीत (सिरसा), रामपाल दास (कबीर) जैसे अपनी पूजा करवाने वाले स्वयं घोषित भगवान भी हैं। पर पेरियार तो मूर्तिपूजा का घोर विरोधी था, फिर उसकी मूर्ति की पूजा कैसे हो सकती है? उसके प्रचारकों (भक्तों) ने तो उसकी प्रथम बरसी (मृत्यु दिवस के एक वर्ष बाद) पर २५ दिसम्बर १९७४ को उसकी भावना के अनुरूप चेन्नई में राम, लक्ष्मण व सीता के पुतले जलाये थे। 'रावणलीला' के इस कार्यक्रम में किसी नेता (अरुईतम्बी) ने कहा- 'हमें न तो भगवान में विश्वास है, न ही किसी धर्म में हम विश्वास रखते

हैं। जो लोग रावण का पुतला जलाते हैं और देश की एकता के नारे लगाते हैं, उन्हें मैं मूर्ख के सिवा कुछ नहीं मानता। पेरियार ने जब गणेश की मूर्ति का खण्डन किया था, तब भी इन्हीं लोगों ने हाय तौबा मचाया था।'

पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति फेडरेशन कानपुर के नेता श्री जी.एल. साहू ने कहा- "अगर राम मुझे कहीं मिल जाए तो मैं जूते लगाना नहीं भूलूंगा। मेरा हिन्दू धर्म से विश्वास हट गया है।... पेरियार ने देश को सन्देश दिया है कि राम भगवान नहीं, राम एक हत्यारा था। इसलिए उसे आदर की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये।... मेरी लाइब्रेरी में जब भी कोई विदेशी आता है तो मैं उससे यही कहता हूँ कि राम और कृष्ण को जूते मारो।..."

एक अन्य वक्ता शालिग्राम ने कहा- ''राम का पुतला जलाने पर प्रतिबन्ध लगाया जा रहा है। रावण के पुतले जलाने पर प्रतिबन्ध क्यों नहीं? बन्धुओ, एकता का परिचय दो। राम को ही नहीं उसके पूरे परिवार को जला दो।... श्रीमान् पेरियार का आदर्श मेरे साथ है।"

इस भाषणबाजी के बाद पुतलों में आग लगा दी गई। अन्य लोगों ने अपने साथ लाये राम, लक्ष्मण, सीताजी के कलेण्डरों को गन्दे-गन्दे नारे लगाकर जला दिया। इस घटना का विस्तृत विवरण दैनिक नवभारत टाइम्स के बम्बई संस्करण (दिनांक ३१ दिसम्बर १९७४) में प्रकाशित हुआ। उसका संक्षिप्त रूप जनज्ञान मार्च १९७५ में छपा था।

सोचिये, जिसकी हिन्दूधर्म पर आस्था नहीं है, क्या उसके द्वारा हिन्दू आस्था के प्रतीक तोड़ना व जलाना असंवैधानिक नहीं है? पेरियार के इन विचारों व कार्यो का आज भी प्रचार किया जा रहा है। दलितों के नाम पर राजनीति करने वाले स्वार्थी लोगों ने डॉ. अम्बेडकर को भी पेरियार के साथ जोड़ दिया। सम्भवतः उसी के परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश में डॉ. अम्बेडकर की मूर्ति भी तोड़ी गई। मेरे विचार से इस लज्जाजनक कृत्य के दोषी दोनों हैं- डॉ. अम्बेडकर के नाम से पेरियार के विचारों का प्रचार करने वाले भी और प्रतिक्रियास्वरूप डॉ. अम्बेडकर की मूर्ति तोड़ने वाले भी। क्योंकि वास्तव में डॉ. अम्बेडकर और पेरियार के विचार बहुत भिन्न थे। जैसे- पेरियार आर्यों (ब्राह्मण आदि हिन्दुओं) को विदेशी आक्रमणकारियों की सन्तान मानते थे, जबकि डॉ. साहब भारत को ही आर्यों की आदिभूमि मानते थे। पेरियार संस्कृत भाषा के कट्टर विरोधी थे, जबकि डॉ. साहब संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्षधर थे। पेरियार दलितों के लिए अलग देश चाहते थे और १९४० में उन्होंने कांचीपुरम में प्रस्तावित द्रविड़िस्तान का नक्शा जारी किया था, जिसे अंग्रेजों का समर्थन नहीं मिला, जबकि डॉ. साहब अखण्ड भारत के समर्थक थे। पेरियार दलितों को मुस्लिम बनाने के लिए प्रोत्साहित करते थे, जबकि डॉ. साहब ने ईसाइयों व मुस्लिमों के प्रलोभन ठुकरा दिये व अपने अनुयायियों को बौद्ध बनाया। पेरियार का दलितोद्धार हिन्दू ग्रन्थों व देवी-देवताओं की आलोचना तक ही सीमित था, जबकि डॉ. साहब वास्तव में दलितों का उत्थान चाहते थे। इसके लिए वे आरक्षण को भी आवश्यक नहीं मानते थे। डॉ. साहब ने भारत का संविधान बनाने में मुख्य भूमिका निभाई, जबकि पेरियार ने तिरंगे झण्डे व भारत के संविधान को जलाने तक की भी बात कह दी थी।

पेरियार कैसे दलितोद्धारक थे, यह एक वंचित बुद्धिजीवी एम.वेंकटैशन की पुस्तक 'ई वी रामस्वामी नायकर' का दूसरा पक्ष पढ़ने से पता चलता है। वे लिखते हैं कि उन्होंने (पेरियान ने) कहा कि कपड़े के दाम इसलिए बढ़ने लगे हैं क्योंकि वंचित वर्ग की महिलाएं कपड़े पहनने लगी हैं, बेरोजगारी इसलिए बढ़ रही है क्योंकि वंचित नौकरियों के लिए आवेदन करने लगे हैं, चावल के दाम इसलिए बढ़ गए हैं कि शराब पीने वाले चावल खाने लगे हैं।' इसके बाद वे लिखते हैं कि पेरियार वंचितों, उनकी शिक्षा, उनके कल्याण ओर विकास के कट्टर विरोधी थे। एक वंचित के तौर पर उनके विचार और आकलन को पढ़ने के बाद मैं इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ।"

श्री सतीश पेडणेकर ने लिखा है- "कई बार लगता है काशीराम और मायावती ने अंग्रेजी में छपे पेरियार के विचारों के आधार पर पेरियार के बारे में सोच बनाकर उसको बसपा पर थोप दिय। उन्होंने पेरियार

के तमिल में छपे विचारों को पूरी तरह पढ़ा नहीं होगा। पेरियार का ज्यादातर साहित्य और भाषण तमिल में ही है। यदि वे पेरियार की वंचित और अल्पसंख्यक विरोधी सोच को जानते होते, तो उन्हें 'दलित महापुरुषों' में शामिल न करते। पेरियार के विचारों को न जानने के कारण ही कांशीराम और मायावती ने पेरियार की मूर्ति स्थापित करने के नाम पर अपनी उत्तर प्रदेश की सरकार दाव पर लगा दी थी।" (पाञ्चजन्य, २८ जून २०१५)

डॉ. अम्बेडकर जैसे राष्ट्रवादी विचारक की मूर्ति तोड़ा जाना वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। इसमें शरारती तत्वों की करतूत से मना नहीं किया जा सकता, क्योंकि गुण्डागर्दी करने वाले असामाजिक तत्व ऐसे ही अवसरों की ताक में रहते हैं। उन स्वार्थियों का समाज के हानि-लाभ से कोई वास्ता नहीं होता। चाहे कितना भी अच्छा आन्दोलन हो, उसमें हिंसक प्रवृत्ति के लोग बिना बुलाये शामिल हो जाते हैं और तोड़-फोड़ करते हैं। चाहे हरियाणा का जाट आरक्षण आन्दोलन हो या 'पद्मावत' फिल्म के विरोध में आन्दोलन हो, ऐसे तत्व सभी जगह घुस गए और हिंसा व आगजनी कर अपनी आँखों को तृप्त व आत्मा को सन्तुष्ट कर गये। फिर आन्दोलन के नेता सफाई देते रहे कि यह खून-खराबा जाटों ने नहीं किया या राजपूत ऐसा अमानवीय कृत्य नहीं कर सकते। इससे क्या होता है, बदनामी तो आन्दोलन करने वालों की होगी। इसलिए किसी भी आन्दोलन के नेता को अमर क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल के शब्दों को अवश्य याद रखना चाहिये-

''सभी बड़े-बड़े आन्दोलनों में देखा गया है कि साधु और महान् चरित्रवान् पुरुषों के साथ कुछ नर-पिशाच भी दल में आ मिलते हैं। यह आन्दोलनों का दोष नहीं है, यह तो हमारे मनुष्य चरित्र का ऐब है। शायद लेनिन ने भी कहा था कि प्रत्येक सच्चे बोलशेविक के साथ कम से कम उनतालीस बदमाश और साठ मूर्ख उनके दल में मिल गये थे। और मैंने श्रद्धेय शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय जी से सुना है कि देशबन्धु दास (चिरतंजन) ने भी कदाचित् कहा था कि वकालत करते-करते हम बुड्ढे हो गए और इस बीच हमको बड़े-बड़े धोखेबाजों से भी साबिका पड़ा; किन्तु असहयोग आन्दोलन (गाँधीजी का) में हमने जितने धोखेबाज आदमी देखे, वैसे जिन्दगी भर में नहीं देखे थे।" (बं.जी. पृ. ८१)

महापुरुष भी मनुष्य ही होते हैं। अतः उनसे भूलें होना असम्भव या आश्चर्यजनक बात नहीं है। फिर भी यह सत्य है कि डॉ. अम्बेडकर में दलितों के उत्थान के साथ-साथ राष्ट्रहित की भावना थी। जबकि उनके नाम पर राजनीति करने वालों ने उनका एक पक्ष ही समाज के सामने रखा, जिससे नेता राजनैतिक लाभ तो ले गये, पर डॉ. साहब का दायरा संकुचित हो गया, वे राष्ट्र-पुरुष के जगह वर्ग विशेष के वकील बना दिये गये। अपने लाभ के लिए किसी महापुरुष पर एकाधिकार जताना किसी भी दल या देश के हित में नहीं है। सभी के सामर्थ्य की अपनी सीमा होती है। अतः महापुरुषों की परस्पर तुलना करने से बचना चाहिये। यदि हम आर्य समाज के शास्त्रार्थ महारथी पं. धर्मदेव विद्या मार्तण्ड की तरह खुले दिल से सभी महापुरुषों का सम्मान नहीं कर सकते, तो उनके प्रति घृणा से भी बचना चाहिये-

काश्मीरराज्यं ननु भारताङ्गं भवेद् विभक्तं नहि तत्कदाचित्।
बन्धे स्वदेहस्य बलिं ददानं, श्यामाप्रसादाख्य-सुवीरमीडे।।
हीनेऽन्वये जात इह स्वकीयैर्गुणैर्महत् प्राप पदं य उच्चम्।
प्राज्ञो विपश्चिद् बुधमानकर्त्ता स्तुत्यो विधिज्ञाग्रणि भीमरावः।।
विधिज्ञाग्रणिभीमरावः।।

❑❑

भूल-सुधार

प्रिय पाठकवृन्द! मार्च २०१८ के अंक में प्रकाशित 'जब सत्य की जीत हुई' में स्वामी दर्शनानन्द की मृत्यु- तिथि ६ अप्रेल १९१३ लिखी गई थी, इसे ११ मई १९१३ माना जाए।

दूसरी बात, जनवरी २०१७ के अंक में 'आर्य देशभक्तों की उपेक्षा ' लेख के अन्त में पं0 गंगाप्रसाद उपाध्याय जी की काव्यपंक्तियां लिखी थीं-याद मेरी तुम्हें रहे न रहे------। भूलवश इन्हें बिस्मिल जी की लिखा गया था। कृपया, सुधार कर लें।

पृष्ठ २ का शेष

लेकिन... रूहल्ला खान बोला वह शर्त है बड़ी मामूली। तुझे बस इस्लाम कबूल करना है। तेरी जान बख्श दी जाएगी। शम्भा जी बोले बस, रूहल्ला खान आगे एक भी शब्द मत निकालना मलेच्छ। रूहल्ला खान अट्टाहस लगाते हुए वहाँ से चला गया।

उस रात लोहे की तपती हुई सलाखों से शम्भा जी की दोनों आँखें फोड़ दी गईं। उन्हें खाना और पानी भी देना बंद कर दिया गया।

आखिर ११ मार्च को वीर शम्भा जी के बलिदान के दिन आ गया। सबसे पहले शम्भा जी का एक हाथ काटा गया, फिर दूसरा, फिर एक पैर को काटा गया और फिर दूसरा पैर। शम्भा जी का पाद विहीन धड़ दिन भर खून की तलैया में तैरता रहा। फिर सायंकाल में उनका सर काट दिया गया और उनका शरीर कुत्तों के आगे डाल दिया गया। फिर भाले पर उनके सर को टांगकर सेना के सामने उसे घुमाया गया और बाद में कूड़े में फेंक दिया गया।

मरहठों ने अपनी छातियों पर पत्थर रखकर अपने सम्राट के सर का इंद्रायणी और भीमा के संगम पर तुलापुर में दाह संस्कार कर दिया। आज भी उस स्थान पर शम्भा जी की समाधि है, जो पुकार- पुकार कर वीर शम्भा जी की याद दिलाती है कि हम सर कटा सकते हैं पर अपना प्यारा वैदिकधर्म कभी नहीं छोड़ सकते।

मित्रो, शिवाजी के तेजस्वी पुत्र शंभाजी के अमर बलिदान की यह गाथा हिन्दू माताएं अपनी लोरियों में बच्चों को सुनायें, तो हर घर से महाराणा प्रताप और शिवाजी जैसे महान वीर जन्मेंगे। इतिहास के इन महान वीरों के बलिदान के कारण ही आज हम गर्व से अपने आपको श्री राम और श्री कृष्ण की संतान कहने का गर्व करते हैं। आइये, आज हम प्रण लें कि हम उन्हीं वीरों के पथ के अनुगामी बनेंगे।

बोलो वीर छत्रपति शिवाजी की जय।

बोलो वीर छत्रपति शम्भाजी की जय।।

❑❑

।। इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्।।

गुरुत्वाकर्षण के सर्वप्रथम अन्वेषक न्यूटन नहीं?

(वैदिक विज्ञान पृ. २१- लेखक पं. शिवशंकर शर्मा 'काव्यतीर्थ')

गुरुत्वाकर्षण बल के बारे में हम सभी जानते होंगे कि इस शक्ति के कारण ही पृथिवी सभी पदार्थों को अपनी ओर आकर्षित करती है और कहा जाता है कि यूरोपवासी **ऐसेकन्यूटन** ने सर्वप्रथम इसको जाना, तब से यह विद्या पृथ्वी पर फैली है तथा कुछ लोग यह भी मानते हैं कि न्यूटन से भी हजारों वर्षों पूर्व गुरुत्वाकर्षण की खोज **भास्कराचार्य जी** ने की थी। ये दोनों बातें ही यथार्थ नहीं हैं। इसका प्रमाण यह है कि भास्कराचार्य जी द्वारा प्रणीत **'सिद्धान्तशिरोमणि'** नामक ग्रन्थ में भास्कराचार्य जी ने स्वयं एक प्राचीन भारतीय आचार्य का श्लोक उद्धृत किया है, जो गुरुत्वाकर्षण बल को भलीभांति बतला रहा है। जो इस प्रकार है कि-

आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखीकरोति। आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् कुरियं प्रतीतिः।।

अर्थात् सर्वपदार्थगत एक आकर्षण शक्ति विद्यमान है, जिस शक्ति से यह पृथिवी आकाशस्थ पदार्थ को अपनी ओर आकृष्ट करती है और जो यह खींच रही है, वह गिरता मालूम होता है अर्थात् पृथिवी अपनी ओर खींच कर आकाश में फेंकी हुए वस्तु को ले आती है, इसको लोक में गिरना करते हैं। इससे विस्पष्ट है कि भास्कराचार्य से बहुत पूर्व यह विद्या देश में विद्यमान थी।

❑❑

हिन्दू धर्म में प्रचलित विभिन्न वादों की तुलना

(इन्द्रदेव, टीचर्स कॉलोनी, बुलन्द शहर,मो0:-०८६५८७७८४४३)

हिन्दू धर्म में तरह- तरह के वाद प्रचलित हैं। इनके बारे में मुख्य २ जानकारियां दी जा रही हैं, जो निम्न प्रकार हैं :-

१. त्रैतवाद- ब्रह्माण्ड में **ईश्वर-जीव-प्रकृति** तीन अनादि सत्ताएँ हैं, यह एक शाश्वत-नित्य-सत्य सिद्धान्त है। यही वेद प्रतिपादित सिद्धान्त है। ईश्वर-जीव-प्रकृति इन अनादि सत्ताओं के अस्तित्व के प्रतिपादक विचार-चिन्तन-कथन को त्रैतवाद कहा जाता है। ईश्वर-जीव-प्रकृति इन तीनों पदार्थों की विवेचना जैसे वेदों में की गई है, वैसे ही उपनिषद् न्याय-वैशेषिक-सांख्य आदि दर्शनों में भी की गई है।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने त्रैतवाद को ही सर्वोत्तम माना है क्योंकि यह वेदानुकूल है। आर्यसमाज त्रैतवाद का ही प्रचार- प्रसार करता है।

२. अद्वैतवाद- वेद विरोधी नास्तिक विचारों ने त्रैतवाद के सिद्धान्त को उलझा दिया है। वेद विरोधी सिद्धान्तों को छिन्न- भिन्न करने के लिए सिद्धान्त उभरा जिसे "अद्वैतवाद" के नाम से जाना गया। शंकराचार्य सम्पुष्ट अद्वैतवाद में ब्रह्म ही एक मात्र पदार्थ है। ब्रह्म ही सत्य है- जगत मिथ्या है- जीव ब्रह्म ही है- ब्रह्म से भिन्न नहीं है।

मध्य प्रदेश में आनन्दपुर नाम का शहर है। इसी शहर में अद्वैतवाद का देश में प्रचार-प्रसार करने के लिए आनन्दपुर सत्संग आश्रम का मुख्य कार्यालय बनाया गया है। यहीं से समस्त शाखाओं को दिशा-निर्देश दिए जाते हैं। बुलन्दशहर में भी तीन मंजिला शानदार भवन है। भजन-कीर्तन-सत्संग समय- समय पर होते रहते हैं। मुख्य त्यौहारों पर सामूहिक भोज भी होता है।

३. विशिष्टाद्वैतवाद- रामानुजाचार्य पोषित इस वाद में ईश्वर-चित्त-अचित्त तीन पदार्थ हैं। ये पदार्थ ब्रह्म के ही भेद हैं। ब्रह्म का ईश्वर भाग आत्मा-स्थानीय है। जीव और जगत् ब्रह्म के शरीर स्थानीय भाग हैं। ब्रह्म का ईश्वर रूप चित् (जीव) अचित् (जगत) से विशिष्ट है।

४. द्वैतवाद- माध्व मत के इस वाद में ब्रह्म-जीव-जगत भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। भिन्न भिन्न होने पर भी ब्रह्म निरपेक्ष है, जबकि जीव ओर जगत सापेक्ष हैं। जीव और जगत ब्रह्म की अपेक्षा रखते हैं। इस मत में ब्रह्म ही ईश्वर है वह विभिन्न अवतार लेता है। जगत का मात्र निमित्त कारण है। मूर्ति पूजक इसी को मानते हैं।

५. अचिन्त्य भेदाभेदवाद- चैतन्यमत के इस वाद में ब्रह्म-ईश्वर कृष्ण है तथा विग्रह वाला है।

६. शुद्धाद्वैतवाद- वल्लभमत के इस वाद में ब्रह्म मायारहित है। आधिदैविक- आध्यात्मिक- आधिभौतिक ब्रह्म के तीन भेद हैं। आध्यात्मिक भेद पर ब्रह्म है- यही ईश्वर व कृष्ण है। ब्रह्म का आधिदैविक भेद जीव का आविर्भाव करता है। ब्रह्म का आधिभौतिक भेद जगत् का आविर्भाव करता है। यह आविर्भाव ब्रह्म के निमित्त व उपादान बनने पर होता है।

७. द्वैताद्वैतवाद-भेदाभेदभाव- निम्बार्काचार्य के इस वाद में चित्त-अचित्त एवं ईश्वर तीन तत्व हैं। ईश्वर ब्रह्म है- इसके ही परब्रह्म नारायण - भगवान - कृष्ण - पुरुषोत्तम आदि नाम हैं। ईश्वर ब्रह्म सगुण है। तथा यह जगत का निमित्त व उपादान कारण है। जीव और जगत से ब्रह्म न तो अत्यन्त भिन्न है और न ही अभिन्न।

निष्कर्ष

१. त्रैतवाद सर्वोत्तम है क्योंकि यह वेदों के अनुकूल है। महर्षि दयानन्द ने इसे ही अपनाने पर जोर दिया है। आर्यसमाजी अखबारों-पत्रिकाओं में समय-समय पर

अथवा हर अंक में छापना चाहिए कि जनता त्रैतवाद को ही समझे और उस पर आचरण करे।

२. शंकराचार्य - रामानुज - मध्व - चैतन्यदेव - निम्बार्क - वल्लभ आदि द्वारा चलाए गए सभी अद्वैतवाद वेदविरुद्ध वाद हैं। ये सभी वाद वेद,उपनिषद् और दर्शन आदि शास्त्रों के भी प्रतिकूल हैं।

३. वेद आदि शास्त्रों में ईश्वर-जीव-प्रकृति इन तीनों अनादि सत्ताओं का पृथक्-पृथक प्रतिपादन है।

४. महर्षि दयानन्द के कथन से स्पष्ट है कि शंकराचार्य का सिद्धान्त नास्तिक मत के खण्डन की दृष्टि से आंशिक रूप से ग्राह्य है, पूर्णतः नहीं।

❑❑

पाकिस्तान दिवस दिनांक 23 मार्च 2018

(इन्द्रदेव, टीचर्स कॉलोनी, बुलन्द शहर)

- १९४६ में कांग्रेस ने देश विभाजित करके मुस्लिमों के लिए पाकिस्तान नाम का नया देश बनाने के लिए सहमति दे दी।

- सीया निर्धारण आयोग के अध्यक्ष “सर सिरिल रैडक्लिफ” बनाए गए, जो लन्दन में जिन्ना के साथ जूनियर वकील रहे थे। इनके नाम पर भी कांग्रेस ने कोई आपत्ति प्रकट नहीं की, जबकि ये जिन्ना की मांगों पर लिहाज कर सकते थे और इन्होंने किया।

- पाकिस्तान में उन जिलों/नगरों को देना था, जिसकी आबादी में मुस्लिमों का प्रतिशत ५१ या उससे ज्यादा था।

- कराची - थारपारकर - उमरकोट में मुस्लिमों का प्रतिशत ४६ प्रतिशत और ३० प्रतिशत तक था अतः ये तीनों नगर/जिले पाकिस्तान को नहीं देने थे, बल्कि भारत में रहने थे।

- कराची बन्दरगाह था, जिसे जिन्ना राजधानी बनाना चाहते थे।

- थारपारकर - उमरकोट राजस्थान की सीमा से सटे हुए थे।

- इन जिलों को आयोग से जिन्ना ने मांग लिया ताकि पूरा सिंध पाकिस्तान को मिले और उसे विभाजित न किया जाए।

- भारत की ओर से बोलने का अधिकार नेहरू को दिया गया। वह अदूरदर्शी- अनुभवहीन और अय्याश प्रवृत्ति का था।

- अंग्रेजों ने नेहरू की कमजोरी का लाभ उठाते हुए लार्ड माउन्टबेटन की पत्नी पावेल से उसकी मित्रता करा दी। नेहरू और पावेल खुलकर हंसी मजाक करने लगे।

- पावेल बातों- बातों में नेहरू की मौखिक सहमति लेने लगी। उसने पूरा सिंध पाकिस्तान को देने की सहमति नेहरू से ले ली।

- आचार्य कृपलानी-रामजेठमलानी-दौलतराम जयरामदास-लालकृष्ण आडवानी जैसे प्रमुख नेता मूक दर्शक बने रहे और सक्रिय होकर तीनों जिलों को भारत में ही रखने की कोई भूमिका नहीं निभाई।

- यदि हिन्दू महासभा के नेताओं को बोलने का अधिकार होता, तो वह यह कहते कि यदि जिन्ना कराची को राजधानी बनाना चाहते हैं, तो उन्हें लाहौर छोड़ना होगा और थारपारकर - उमरकोट भारत में रहेंगे क्योंकि वहां मुस्लिम ३० प्रतिशत ही हैं।

- इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने आयोग को मौखिक संदेश भेजा था कि लाहौर भारत को दिया जाए।

- नेहरू की शीघ्र प्रधानमंत्री बनने की इच्छा के कारण उसने कह दिया कि वे कोई सौदेबाजी नहीं करेंगे। आयोग जो निर्णय देगा, उसे स्वीकार कर लेंगे।

❑❑

बचाइए! विवाह-संस्कार की पवित्रता को

(गंगाशरण आर्य, मो0:-०९८७१६४४१६५)

विवाह-संस्कार की पवित्रता को बचाने के लिए हम सभी को अपनी मूल संस्कृति को ध्यान में रखकर एक बार तो महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित सोलह संस्कारों पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थ **'संस्कार विधि'** और **'सत्यार्थ प्रकाश'** के चतुर्थ समुल्लास में वैवाहिक प्रकरण को अवश्य ही पढ़ लेना चाहिए, ताकि भावी पीढ़ियां (नवयुवक-नवयुवतियाँ) अपने माँ-बाप की इज्जत को तार-तार करने से बच सकें। विचारणीय बिन्दु इस प्रकार हैं :-

सगोत्र विवाह- 'मनुस्मृति' में स्पष्ट लिखा है कि जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो, और पिता के गोत्र की न हो, उस कन्या से विवाह करना उचित है। इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जैसे पानी में पानी मिलने से विलक्षण गुण नहीं होता, वैसे एक गोत्र पितृ व मातृकुल में विवाह होने में धातुओं के अदल-बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती।

समीपस्थ विवाह होना- विवाह दूर देश में होने से हितकारी होता है। इसी भावना से कन्या का नाम 'दुहिता' (अर्थात् दूरे हिता दुहिता) पड़ा है। मायका और ससुराल पास-पास होने से सुख-दुःख का भान (प्रतीति) और विरोध होना भी संभव है, दूरस्थ देशों में नहीं। दूरस्थों के विवाह में दूर-दूर प्रेम की डोरी लम्बी बढ़ जाती है, निकटस्थ विवाह में नहीं।

प्रेम विवाह (लव मैरिज)- लड़का-लड़की आपस में रजामंद हों, तो विवाह अच्छा ही है,लेकिन माता-पिता की जानकारी के बिना लड़का-लड़की का पारस्परिक मेल-जोल 'गर्ल फ्रैण्ड्स' और 'ब्वाय फ्रैन्ड्स' के नाम पर जो आजकल शुरू हो जाता है- घर से बाहर एकान्त सेवन करते-कराते जो विवाह के लिए तैयार होकर घरवालों की स्वीकृति न होने पर भी घर से भागकर विवाह (कोर्ट-मैरिज) करते हैं, वह एकदम अनुचित है और हमारी परम्पराओं के विरुद्ध है। इसका दुष्परिणाम अपनी भावी पीढ़ियों में देखने को अवश्य मिलता है। बाद में पछतावा ही शेष रह जाता है।

लिव इन रिलेशनशिप- बिना माता-पिता की जानकारी के लड़का-लड़की का विवाह से पूर्व ही अपने-अपने निवास स्थान से दूर कहीं शहर में पढ़ाई के या नौकरी के बहाने किराये पर घर लेकर रहने लग जाना अव्यवहारिक है। इस तरह व्यभिचार में लिप्त होकर जीवन बर्बाद करना घोर पाप है। संविधान का आश्रय लेकर स्वयं को औरों की नजरों में निष्पाप समझ बैठना मूर्खता ही है। इस प्रकार के सम्बन्ध विवाह में प्रायः बदलते नहीं, यदि बदल भी जाए तो सुखी गृहस्थ जीवन कभी भी होता नहीं। स्वार्थ और व्यभिचार के कारण प्रायः इस प्रकार के युवक-युवतियाँ कोर्ट में धक्के खाते-फिरते हैं।

लव मैरिज को अरेन्ज मैरिज में परिवर्तित करना और प्री वैडिंग की तरफ जाना- लिव इन रिलेशन की तर्ज पर कुछ दिनों के लिए लड़का-लड़की अपनी सहमति में परिवारजनों को मजबूर करके विवाह से पूर्व ही कहीं दूर फोटोग्राफर के एक समूह के साथ देश के अलग-अलग सैर-सपाटों की जगह, बड़े-बड़े होटलों, हैरिटेज बिल्डिंगों, समुद्री बीच व अन्य ऐसी जगहों पर जहाँ सामान्यतः पति-पत्नी शादी के बाद हनीमून मनाने जाते हैं, वे पहुँच जाते हैं।

पिक्चरों में प्रेमी-प्रेमिकाओं को जिन मुद्राओं में दिखाया जाता है, (जो दृश्य परिवारजन मिलकर एकसाथ नहीं देख सकते) उस प्रकार की वीडियो बनाकर शादी के दिन मुख्य द्वार पर फोटो और स्टेज पर वीडियो चलाई जाती है, ताकि विवाह संस्कार अर्थात् फेरों से

पूर्व ही सभी उपस्थित जन उनको देखकर अपना-अपना आशीर्वाद (उपहार आदि) भी दे सकें और भोजन खाकर लौट जाएं और सभी जन ऐसा ही करते हैं। आजकल कौन फेरों पर बैठना चाहता है। जिस समय फेरे पड़ते हैं, वर- वधु को समझाया जाता है, प्रतिज्ञाएं वर-वधु को कराई जाती हैं, उस समय आमन्त्रित मेहमानों की साक्षी होना जरूरी है। इसी समय के लिए तो उन्हें आमन्त्रित करते हैं, ताकि फेरे होने पर उनका आशीर्वाद मिल सके। इस प्रकार आजकल जो सम्पन्न परिवारों के फैशनेबल बच्चे अंग्रेजियत के शिकार होकर, यूरोपियन सभ्यता के चक्कर में आकर व्यभिचार प्रेमी हो गए हैं। उन्हें विवाह संस्कार की पवित्रता की कभी भी सही जानकारी कैसे हो सकती है? कभी नहीं हो सकती। उनका गृहस्थ जीवन पूरी तरह सुखमय होगा कहा नहीं जा सकता।

विवाह सम्बन्धी औचित्यपूर्ण व्यवस्था :-

माता-पिता को अपने युवक-युवतियों के विवाह करने से पूर्व ये निश्चय रखना चाहिए कि कन्या और वर का विवाह से पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिए क्योंकि युवावस्था में स्त्री-पुरुष का एकान्तवास दूषण कारक (बुरा कार्य) होता है।

माता-पिता की दृष्टि में जब दोनों के गुण-कर्म-स्वभाव सदृश हों, मेल खाते हों, दोनों का छायाचित्र अर्थात् फोटो एक-दूसरे को दे देवें और दोनों को परस्पर एक-दूसरे के व्यक्तित्व के बारे में चरित्र सम्बन्धी गुणों की साम्यता को बताते हुए परस्पर बातचीत करने का अवसर प्रदान करें लेकिन दोनों को एकान्त में नहीं बल्कि कन्या के माता-पिता आदि भद्रपुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बातचीत और जो एक- दूसरे की गुप्त व्यवहार वाली बातें पूछना चाहें तो वो भी मौखिक व लिखित रूप में पूछकर समाधान कर सकते हैं। जब दोनों (युवक-युवती) का दृढ़ प्रेम (निश्चय) विवाह करने में हो जाए, तो वो भी मौखिक व लिखित रूप में पूछकर समाधान कर सकते हैं। जब दोनों (युवक-युवती) का दृढ़ प्रेम (निश्चय) विवाह करने में हो जाए, तो विवाह की तिथि रख कर तदनुसार कार्यक्रम करें।

गर्भाधान संस्कार न हो, तब तक विवाह संस्कार सम्पन्न नहीं होता है। अतः कन्या के रजस्वला होने की तिथि को ध्यान में रखकर ही विवाह संस्कार, लग्न-सगाई तथा गर्भाधान संस्कार की रात्रि तक का समय निर्धारित किया जाता है। कन्या की माता से पूछकर ही सब तिथियाँ निश्चित की जाती हैं, इसी को शुभ मुहूर्त कहा जाता है।

अब विवाह संस्कार के अवसर पर आजकल जो होता है, वे विसंगतियाँ इस प्रकार हैं :-

* गुण-कर्म-स्वभाव के मेल के लिए अज्ञानी पण्डितों के पास जाना।

* शुभ मुहूर्त के लिए अज्ञानी पण्डितों के चक्कर में पड़ना और लुटना।

* अज्ञानी पण्डितों से विवाह संस्कार कराकर वैदिक रीति से अनभिज्ञ बने रहना।

* **कन्यादान**- कन्या के विवाह में कन्या के माता-पिता और बन्धु-बांधवों द्वारा कन्या को जो रुपया-पैसा, आभूषणादि एवं अन्य आवश्यक सामान दिया जाता है, वह कन्यादान कहलाता है। जबकि कई लोग कन्या को ही दान की वस्तु समझकर पत्नी के साथ पशुवत व्यवहार करने लगते हैं, जिससे स्त्री जाति का शोषण प्रारम्भ हो जाता है। वैदिक नारी के विषय में न पढ़ने के कारण ही ऐसा होता है।

* विवाह संस्कार अर्थात् फेरों से पूर्व ही आगन्तुक (आमन्त्रित लोग) खाना खाकर स्टेज पर अपनी फोटो खिंचवा कर, दान का लिफाफा थमाकर अपने घर चले जाते हैं। उनसे कोई पूछे कि आपने आशीर्वाद कुँवारों को दिया था या दम्पति को, तो उनके पास शर्माने के सिवाय कोई उत्तर नहीं होगा।

- विवाह संस्कार के समय यज्ञवेदी पर वधू पक्ष की स्त्रियां जो गाली के रूप में अपने अभद्र गाने व गीत (सीटने) शुरू करती हैं, तो वे वैदिक भावों को वर-वधू

तक पहुँचने ही नहीं देती हैं। और अधिकांश बाराती तो पहले ही खिसक जाते हैं। जिस कार्य पर अर्थात् विवाह संस्कार यज्ञवेदी पर सर्वाधिक पैसा और समय व्यय होना चाहिए था, उस पर सबसे कम समय और सबसे कम पैसा खर्च करते हैं। फालतू कार्यों पर जैसे बैण्ड-बाजा, डी.जे. आदि रॉक संगीत, भोजन की अपव्ययता (फिजूल खर्च), टेण्ट की साज-सज्जा, अनावश्यक अभद्र एवं अश्लील मुद्राओं में वर-वधू की वीडियो-फोटोग्राफी, दहेज, जूता छुपाना, रिब्बन कटाना, कन्या को विदा से पूर्व वर के साथ घर के अन्य सभी दामादों की जुहारी इत्यादि व्यर्थ के कार्यक्रमों पर अन्धाधुंध खर्च कर देते हैं। जिसका दुष्परिणाम आर्थिक दृष्टि से कमजोर गृहस्थियों को भोगना पड़ता है।

निष्कर्ष :-

१. विवाह संस्कार की गौरव-गरिमा को अक्षुण्य बनाए रखने के लिए हमें उसकी पवित्रता पर ध्यान देना चाहिए। जो लोग अक्सर समाज के बिगड़ने का रोना रोते रहते हैं, उनके घरों में होने वाले विवाह आदि के शुभावसरों पर जब डी.जे. आदि चलता है और अश्लील वीडियोग्राफी, जिसे आज हम प्री-वेडिंग कहते हैं, स्टेज के साथ लगी बड़ी स्क्रीन्स पर चल रही होती है, तो मैं जब उनसे पूछता हूँ तो प्रतिक्रिया स्वरूप वे ही लोग पाश्चात्य संस्कृति का अनुमोदन करते हुए कहते हैं कि भाईसाहब आजकल सब चलता है, मॉडर्न जमाना है, आजकल के बच्चे एडवान्स हैं, तो शर्म संकोच कैसी सब चलता है लेकिन अगर ऐसा ही है, तो ऐसी सोच रखने वालों से मैं कहना चाहता हूँ कि तुम तो पशुजाति से भी ज्यादा गिरे हुए हो क्योंकि ईश्वर की दण्ड व्यवस्था के आधीन होने के कारण मजबूरीवश उन्हें सब खुल्ले में करना पड़ता है क्योंकि न तो उनमें वस्त्र पहनने की बुद्धि होती है और न ही रहने के लिए घर की छत होती है लेकिन जब इंसान भी ऐसा करने लगे, तो जरा विचार करो कि उसकी गणना किस श्रेणी में की जाए?

२. अगर मैं प्री-वेडिंग के समर्थकों से कहूं कि अपने बच्चों के सामने हर रोज वही करे, जो अपने बैडरूम में करते हो, तो क्या वे सहमत होंगे? अगर नहीं, तो फिर अपनी संस्कृति को नीलाम करने का समर्थन तो मत करो।

३. कुछ लोग अन्दर से इस सबका विरोध तो करना चाहते हैं लेकिन ये सोचकर कि 'ब्याह बिगाड़ने आ गया' ऐसा कहेंगे इसलिए चुप्पी साधे रहते हैं। उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए बल्कि स्वयं नहीं विरोध कर सकते, तो जो विरोध करते हैं, उनका समर्थन तत्काल करना चाहिए, तभी समाज अपसंस्कृति के जाल से बाहर निकल सकेगा।

४. सबसे बड़ी बात कि जब हमारे घर पर कोई मेहमान आते हैं, तो क्या स्वागत सत्कार के बाद हम उन्हें हँसी- मजाक में गालियाँ देना पसन्द करेंगे? कभी नहीं। ये तो साधारण मेहमानों की बात हो रही है लेकिन विवाह जैसे पवित्र अवसर पर जिससे समाज और राष्ट्र को महान बनाने की ईकाई सुप्रजा प्राप्त होती है, पर उन मेहमानों अर्थात् बारातियों को सीटने के रूप में संगीत के नाम पर बुजुर्ग महिलाएं भी अभद्रता का परिचय देती हैं क्या यह शोभायुक्त है? नहीं, इससे हमारी संस्कृति व संस्कारों पर उंगली उठती है।

५. आजकल मौज-मस्ती के नाम पर लड़का-लड़की को विवाह से पूर्व ही घूमने के लिए भेज दिया जाता है, जहाँ वे फिल्मी गाने की तर्ज पर और कलाकारों की भाँति कम परिधानों में एक-दूसरे का चुम्बन करते हैं व अश्लील हरकते करते हैं। मैं पूछना चाहता हूँ, उन माता-पिताओं से जो अपने बच्चों को प्री-वेडिंग के लिए भेजते हैं कि क्या उन्होंने गृहस्थ में जाने से पूर्व इस प्रकार की 'किस्स' (Kiss) इत्यादि अपने बुजुर्गों के सामने किए थे? क्या वे शादीशुदा होने के बावजूद भी आज अपनी प्री-वेडिंग की फिल्म बनवाकर अपने माता-पिता एवं रिश्तेदारों को अपनी सालगिरह के दिन दिखा सकते हैं? जिसमें कि वे एक-दूसरे की बाहों में

शेष पृष्ठ २३ पर

वर्ष का नया प्रथम दिन नव-संवत्सर इतिहास का एक गौरवपूर्ण दिन

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून, मो0ः-०९४१२९८५१२१)

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा अर्थात् १८ मार्च, सन् २०१८ से नव सृष्टिसंवत एवं विक्रमी संवत्सर का आरम्भ हो रहा है। हमारे पास काल वा समय की अवधि की जो गणनायें हैं, वह मुख्यतः दिन, सप्ताह, माह व वर्ष में होती हैं। यदि सृष्टि की उत्पत्ति, मानवोत्पत्ति अथवा वेदोत्पत्ति का काल जानना हो, तो वह वर्ष व वर्षों में बताया जाता है। वैदिक गणनाओं में वर्ष की अवधि सामान्यतः ३६० दिन मानी जाती है। लगभग इतनी अवधि पूरी होने पर वर्ष व संवत्सर बदलते हैं। दिनांक १८.०३.२०१८ से सृष्टि संवत् १,९६,०८,५३,११९ आरम्भ हो रहा है, वहीं यह दिवस विक्रमी संवत् २०७५ का प्रथम होगा। अंग्रेजी वर्ष होने पर इसको मानने वाले लोग परस्पर शुभकामनाओं का आदान प्रदान करते हैं। उन्हीं के अनुकरण से हमारे भी अनेक बन्धु इसी प्रकार से एक दूसरे को शुभकामनायें एवं बधाई देने लगे हैं। इस नये नवसंवत्सर के प्रथम दिन का यही महत्व है कि इतने वर्ष पूर्व सृष्टि, वेद व मानव का आरम्भ यहाँ हुआ था तथा महान् पराक्रमी आर्य व हिन्दू राजा विक्रमादित्य शकों को युद्ध में पराजित कर राज्यारूढ़ हुए थे। विक्रमादित्य जी की राजधानी उज्जैन मानी जाती है। विक्रमादित्य एक आदर्श राजा थे। वह मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगेश्वर श्रीकृष्ण एवं वैदिक परम्पराओं को मानने वाले राजा थे। उनकी स्मृति बनाये रखने के लिए तत्कालीन विद्वानों ने २०७४ वर्ष पूर्व इस विक्रमी संवत्सर को आरम्भ किया था।

हम जिस संसार में रहते हैं, वह व समस्त ब्रह्माण्ड ईश्वर से निर्मित व संचालित है। वेदों में ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति सहित मनुष्यों के कर्तव्य एवं अकर्तव्यों का विस्तृत वर्णन व ज्ञान है। हमारी यह सृष्टि बिना कर्ता व उपादान कारण के अस्तित्व में नहीं आई है, अपितु सच्चिदानन्द, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वान्तर्यामी, अनादि, नित्य, अनुत्पन्न, अजर, अमर, अविनाशी और अनन्त ईश्वर ही इस सृष्टि का रचयिता, धारक व पालक है। अतः सृष्टि बनाने का कार्य ईश्वर ने किसी काल विशेष में आरम्भ किया होगा और किसी विशेष समर पर इस सृष्टि का निर्माण सम्पन्न हुआ होगा। यह भी निश्चित है कि ब्रह्माण्ड व हमारे सौर्य-मण्डल के बन जाने वा इसमें जल, वायु, अग्नि व अन्य सभी आवश्यक पदार्थों की उपलब्धि होने पर तथा जिस स्थान विशेष (अनेक प्रमाणों से यह स्थान तिब्बत था) पर मानव सृष्टि अस्तित्व में आई, वह भी इस सृष्टि का कोई दिन विशेष रहा होगा। यदि उपलब्ध जानकारी के आधार पर कहें, तो उस दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का दिन था। मनुष्यों की उत्पत्ति के साथ ही ईश्वर को सृष्टि उत्पत्ति के आदि काल में उत्पन्न युवावस्था वाले स्त्री- पुरुषों को जीवन के व्यवहार करने के लिए भाषा व व्यवहार ज्ञान की भी उपलब्धि करनी थी, अन्यथा उनका सामान्य जीवन प्रवाह सम्भव न होता। अतः ईश्वर ने इसी दिन, चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को, चार ऋषियों, अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को, वेदों का ज्ञान देने के साथ इतर मनुष्यों को परस्पर व्यवहार करने के लिए भाषा का ज्ञान भी दिया होगा। बहुत से विद्वान् इस अनुमान व मान्यता से मतभेद रख सकते हैं। ऐसे विद्वान् महानुभावों से हमारा निवेदन है कि वह या तो वैदिक मान्यताओं को स्वीकार करें या अपनी बातों को युक्ति व प्रमाण सहित प्रस्तुत करें, जिससे इस विषय की भ्रान्तियों का निराकरण हो सके। आर्य पर्व पद्धति के लेखक पं. भवानीप्रसाद जी का कथन है कि यह इतिहास बन गया कि सृष्टि का आरम्भ चैत्र के प्रथम दिन अर्थात् प्रतिपदा को हुआ था, क्योंकि सृष्टि का प्रथम मास वैदिक संज्ञानुसार मधु कहलाता था और फिर वही ज्योतिष में चान्द्र काल

गणनानुसार चैत्र कहलाने लगा था। इसी की पुष्टि में ज्योतिष के हिमाद्रि ग्रन्थ में यह श्लोक आया है

'चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रन्तु, तदा सूर्योदये सति।।'

अर्थात् चैत्र शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय ब्रह्मा ने जगत् की रचना की। यह भी बता दें कि औरंगजेब के समय में भी भारत में नवसम्वतसर का पर्व मनाने की प्रथा थी। इसका उल्लेख औरंगजेब ने अपने पुत्र मोहम्मद मोअज्जम को लिखे पत्र में किया है, जिसमें वह कहता है कि काफिर हिन्दुओं का यह पर्व है। यह दिन राजा विक्रमादित्य के राज्याभिषेक की तिथि है।

भारतीय नव सम्वतसर की यह विशेषता है कि यह ऐसी ऋतु में आरम्भ होता है कि जब न अधिक शीत होता है, न उष्णता और न ही वर्षा ऋतु। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन वातावरण बहुत सुहावना व मनोरम होता है। खाद्यान्न गेहूं की फसल लगभग तैयार हो जाती है। सभी वृक्ष व वनस्पतियां हरे भरे होते हैं जो आंखों को आह्लादित करते हैं। सर्वत्र नये-नये पुष्प अपनी सुन्दरता से एक नये काव्य की रचना करते प्रतीत होते हैं। यह समस्त वातावरण व प्राकृतिक सौन्दर्य अपने आप में एक उत्सव सा ही प्रतीत होता है। यही ऋतु मानवोत्पत्ति के लिए उपयुक्त प्रतीत होती है। यदि अन्य ऋतुओं में मानवोत्पत्ति होती, तो हमारे आदि स्त्री-पुरुषों को असुविधा व कठिनाई हो सकती थी। ईश्वर के सभी काम निर्दोष होते हैं। अतः यह उसी का परिणाम है कि मानव सृष्टि उत्पत्ति ईश्वर ने एक सुन्दर व सुरम्य स्थान तिब्बत जहां पर्वत व वन हैं, शुद्ध वायु बहती है तथा जल भी सुलभ है, की थी। हमें यह अनुभव होता है कि इस दिन हमें अपने आदि पूर्वजों को स्मरण कर स्वयं को उन जैसा चरित्रवान्, ज्ञानी व स्वस्थ व्यक्ति बनाने का संकल्प वा प्रयास करना चाहिये। यदि विश्व के सभी लोग परस्पर मिल कर उस आदिकालीन स्थिति पर विचार करें, तो अविद्या व अज्ञान पर आधारित तथा मनुष्यों के दुःख के प्रमुख कारण मत-मतान्तरों से मनुष्यों को अवकाश मिल सकता है और संसार में एक ज्ञान व विवेक से पूर्ण वैदिक मत स्थापित हो सकता है, जिससे संसार में सुख, शान्ति व कल्याण का वातावरण बन सकता है।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नवसंवत्सर के दिन ही मर्यादा पुरुषोत्तम राजा रामचन्द्र जी के अयोध्या आकर सिंहासनारुढ़ होने की मान्यता भी प्रचलित है। विद्वान् मानते हैं कि इसी दिन महाभारत युद्ध के समाप्त होने पर राजा युधिष्ठिर जी का राज्याभिषेक हुआ था। आदर्श महापुरुष, ऋषि व वैदिक संस्कृति के अनुरागी रामचन्द्र जी का जन्म दिवस रामनवमी का महापर्व भी इस दिवस के ठीक नवें दिन नवमी को होता है। आर्यसमाज की स्थापना चैत्र शुक्ल पंचमी को हुई थी। यह भी भारत के इतिहास की एक युगान्तरकारी घटना है, जिससे समस्त विश्व के मानवों को ईश्वर व जीवात्मा से सम्बन्धित यथार्थ ज्ञान व ईश्वरोपासना की सत्य व प्रामाणिक विधि प्राप्त हुई थी। सन्ध्योपासना की यह विधि ऋषि दयानन्द प्रोक्त है। अतः न केवल चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का दिन अपितु पूरा पक्ष ही महत्वपूर्ण है। इस पर्व को देश व विश्व में मनाया जाना चाहिए। यह भी महत्वपूर्ण है कि किसी भी पर्व को मनाते समय जहां आनन्द व उल्लास होना चाहिए, वहीं ईश्वर-चिन्तन और अग्निहोत्र यज्ञ का भी अनुष्ठान किया जाना चाहिये क्योंकि ये दो कार्य संसार में श्रेष्ठतम व उत्तम कर्म हैं। इसके अनन्तर अन्य सभी वेदविहित कार्य किये जाने चाहिये। ऐसा करने से ही परिवार, समाज व देश का वातावरण आदर्श व अनुकरणीय बन सकता है। यह भी आवश्यक है कि किसी भी पर्व पर किसी भी व्यक्ति को सामिष भोजन व मद्यपान किंचित भी नहीं करना चाहिये। वेदानुसार यह दोनों कार्य अत्यन्त हेय व घृणित हैं।

हम संसार में यह भी देखते हैं कि संसार में जितने भी मत, सम्प्रदाय, वैदिक संस्कृति से इतर संस्कृतियां व सभ्यतायें हैं, वह सभी विगत ३-४ हजार वर्षों में ही अस्तित्व में आई हैं जबकि सत्य वैदिक- धर्म, संस्कृति एवं वैदिक सभ्यता विगत १.९६ अरब वर्षों से संसार में प्रचलित है। वैदिकधर्म ही सभी मनुष्यों का यथार्थ धर्म है। यह धर्म ज्ञान व विवेक पर आधारित, पूर्ण वैज्ञानिक, युक्ति एवं तर्क से सिद्ध है। वेद के ईश्वरीय

ज्ञान होने के कारण वैदिक सिद्धान्तों की पोषक अन्य मतों की मान्यतायें ही स्वीकार्य होती हैं, विपरीत मान्यतायें नहीं। महर्षि दयानन्द ने इस विषय पर सूक्ष्मता से विचार व विश्लेषण किया और पाया कि वेद और वेद सम्मत विचार ही ग्राह्य एवं अनुकरणीय हैं तथा वेद विरुद्ध मत व मान्यतायें त्याज्य हैं। इस सिद्धान्त का पालन ही सभी मनुष्यों के लिए उत्तम है। भविष्य में जैसे-जैसे ज्ञान और विज्ञान का और विकास होता जायेगा, तो अवश्य ही लोग वेद- विरुद्ध बातों को मानना छोड़कर सत्य ज्ञान पर आधारित वैदिक मान्यताओं को ही स्वीकार करेंगे। समय परिवर्तनशील है। सत्य हर काल में टिका रहता है और असत्य नष्ट होता जाता है। यही स्थिति अविद्या व अज्ञान पर आधारित मत-मतान्तरों की अविद्यायुक्त बातों की भी भविष्य में होगी। हमें सत्य को ग्रहण और असत्य का त्याग करना है, अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी है तथा सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार और यथायोग्य व्यवहार करना है। यही वेद, ऋषि दयानन्द और सत्यार्थप्रकाश का शाश्वत् सन्देश है। सत्य पर ही यह संसार व मनुष्य समाज की सभी व्यवस्थायें टिकी हुई हैं। **सत्यमेव जयते नानृतं**। सत्य की सदा जय होती है असत्य की नहीं। वेदों के ज्ञान के विस्तार की भावना, ईश्वर-जीवात्मा चिन्तन और अग्निहोत्र यज्ञ करके नवसम्वतसर आदि सभी वैदिक पर्वो को मनाना चाहिये। ओइम् शम्।

पृष्ठ २० का शेष

लिप्त हों?

जरा विचार करो कि फिल्मी कलाकारों को वे सब सीन बनाने के लिए मुँह मांगे रुपये मिलते हैं इसलिए उनकी चन्द रुपयों की लालच उन्हें अपने कपड़ों को उतार कर अपनी संस्कृति का चीरहरण करने के लिए मरबूर करती है। यह भी पाश्चात्यता का ही प्रभाव है कि उन्हें अपनी संस्कृति से ज्यादा नोट प्यारे हैं लेकिन आपकी कौन सी मजबूरी है, आपके बच्चों को क्या ये सब करने के लिए रुपये मिले हैं? नहीं मिले ना, उल्टा दो फिल्मी गानों की तर्ज पर अपनी वीडियो फोटोग्राफी बनवाने में शादी के खर्च से अलग दो-चार लाख रुपये और खर्च ही करने पड़ते हैं। जिसे मैं फिजूलखर्ची ही कहूँगा क्योंकि हमारे देश में इतनी गरीब व अनाथ लड़कियां हैं, जिनके विवाह रुपयों की कमी से नहीं हो पाते और हम बेकार में अपने मन को खुश करने के लिए २० मिनट की वीडियो पर लाखों खर्च कर देते हैं।

६. वर्तमान में जो ये प्री-वेडिंग का कुचलन तेजी से चल रहा है, ये समाज को किस रसातल की ओर लेकर जाएगा और कहाँ जाकर डुबाएगा इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। आज के नवयुवा बच्चे जो लव-मैरिज और प्री-वेडिंग आदि का स्वांग रचते हैं, इससे ऐसा प्रतीत होता है मानो ये दिखाना चाहते हैं कि हमारे पूर्वज, हमारे बुजर्ग जंगली थे, पागल थे, वे प्यार करना नहीं जानते थे। असली प्यार करना तो हम ही जानते हैं।

७. हमारी वर्तमान पीढ़ी और भावी संतति भी 'विदेशी चैनलों' के द्वारा दिखाई जा रही 'टी.वी. संस्कृति' की देखा-देखी समाज में 'पश्चिमी विकृति' के इस प्रदूषण को फैलाने में निःसंकोच आगे निकल रही है।

अंत में मेरा ऐसे बड़े परिवारों, जो अपने पैसे के बल पर शादियों में इस प्रकार की गलत प्रवृतियों को बढ़ावा देकर समाज के छोटे तबके को संकट में डाल रहे हैं, से अनुरोध है कि अपने परिवारों से तो इस विकृति को दूर करें ही और अपने-अपने समाज में ऐसी 'पश्चिमी विकृति' को बढ़ावा देने वाले परिवारों से भी ऐसी प्रवृत्ति को बन्द करने का अनुरोध करें अन्यथा ऐसी शादियों का जब समाजिक बहिष्कार होगा, तो उन्हें विशेष शर्मिंदा होना पड़ेगा। तब ही ऐसी प्रवृतियों पर रोक लगना संभव हो सकेगा। अन्यथा ऐसी संस्कृति से आगे चलकर समाज का इतना बड़ा नुकसान होगा, जिसकी भरपाई कई पीढ़ियों तक करना संभव नहीं हो सकेगा और कुछ परिवारों की वजह से शादी जैसे पवित्र बंधन पर शादी से पूर्व ही एक बदनुमा दाग लगेगा।

❑❑

श्रद्धया देयम्/अश्रद्धया देयम्

(अर्जुनदेव स्नातक, ५ सीताराम भवन, फाटक आगरा कैण्ट-२८२००१,मो0:-०८६०६३४७३२६)

लेखक ने अभी लेख का शीर्षक लिखा ही था कि- आर्यसमाज के स्वाध्यायशील दो प्रतिष्ठित सदस्य आ गये। अभिवादन के शिष्टाचार के बाद बैठते हुए बोले- आज फिर एक उलझन भरा उपनिषत् का वाक्य समझ में नहीं आ रहा है, अतः आपके साथ उस विषय में परामर्श करने आये हैं- कहते हैं न ''वादे वादे जायते तत्वबोधः।'' अर्थात् परस्पर मिलकर वाद-विवाद या चिन्तन करने से निश्चित सिद्धान्त का बोध अनायास हो जाता है।

इतने में एक सदस्य ने लेख के शीर्षक को देखकर कहा- आपने जो शीर्षक लिखा है- इसी विषय को समझने के लिए आये हैं कि 'श्रद्धया देयम्' अर्थात् दान या सहयोग श्रद्धा से करते हैं, अश्रद्धा से कैसे कर सकते हैं?

इतने में दूसरे सदस्य बोले- यहाँ छापेखाने की अशुद्धि है- यहाँ- "अश्रद्धया अदेयम्' दीर्घसन्धि के नियम से 'अश्रद्धयादेयम्' होना चाहिए।

क्या सही है, क्या गलत है- इसे समझने के लिए पहले हम एतद् विषयक **"तैत्तिरीयउपनिषत्"** के वचनों को देखते हैं। 'सत्यार्थ प्रकाश' के तृतीय समुल्लास के अनुसार- .... **'श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।** तैत्तिरीय उ.प्रपा ७/अनु.११/कं.३१)

यहाँ तो स्पष्ट रूप में 'अश्रद्धया देयम्' यही छपना हो सकता है छपने में भूल हो- 'अश्रद्धयादेयम्' यही छपना चाहिए। व्यावहारिक जगत् में श्रद्धा से देने वाली बात ठीक प्रतीत होती है। अश्रद्धा से देने वाली बात ठीक नहीं लगती है।

आपकी बात वैसे तो सत्य लगती है- किन्तु प्रथम हम स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में क्या अर्थ लिखा है, इसको देखते हैं। उनका किया हुआ अर्थ हम लोगों की दृष्टि में प्रामाणिक है। सत्यार्थ प्रकाश के अनुसार "श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से देना चाहिए।" (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)

इस अर्थ को पढ़कर हम दोनों की उलझन और बढ़ गयी। जहाँ तक श्रद्धा से, शोभा से, प्रतिज्ञा से देना चाहिए- यह ठीक है- किन्तु लज्जा से, डर से देना चाहिए- अब तक हम केवल अश्रद्धा से देना चाहिए-की उलझन में थे। अब 'लज्जा और डर' इन दोनों ने और अधिक उलझन में डाल दिया।

आपकी बात सही है किन्तु क्या इसे नहीं मानें?

ऐसा नहीं- हम शास्त्र वचन एवं स्वामी दयानन्द सम्मत बात को नहीं मानें- यह तो सम्भव ही नहीं है।

तब तो हमें चिन्तन करना चाहिए। महाभाष्य का वचन है- **"व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्"।**

अर्थात् सन्देह होने पर किसी बात को अन्यथा न समझकर व्याख्यान से विशेष बात का निर्णय कर लेना चाहिए।

हम तीनों ही इस बात से भी सहमत हैं। चलिए, विचार करते हैं- इस उलझन को सुलझाने का सफल प्रयास करते हैं। एक बात ध्यान रखें कि यह बात लोक-व्यवहार से ही सुलझ सकती है। यहाँ हम देना अर्थात् सहयोग या सहायता करना यह अर्थ स्वीकार करें।

आप ठीक ही कह रहे हैं- क्योंकि जो हम धनादि देते हैं, वह सहयोग या सहायता ही तो करते हैं।

पहले हम **'अश्रद्धया देयम्'** पर विचार करते हैं। सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में दान के विषय में लिखते समय पहले कुपात्र और सुपात्र के विषय में लिखा है। वहाँ सुपात्र के विषय में लिखते हुए अन्त में लिखते हैं-

"परन्तु दुर्भिक्षादि आपत्काल में अन्न, जल, वस्त्र, औषधि, पथ्य स्थान के अधिकारी सब प्राणिमात्र हो सकते हैं।" (स.प्र. एकादश समु.)

स्वामी जी के उक्त वचनों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि उक्त स्थिति में- केवल मात्र श्रद्धेय को नहीं, अपितु अश्रद्धेय की भी सहायता करनी चाहिए- अर्थात् अश्रद्धया देयम्।

मनुस्मृति अध्याय ७ के ६४वें श्लोक में वर्णित है-

"और (युद्ध में) जो भी घायल हुए हों, उनको औषधादि विधिपूर्वक करें, न उनको (शत्रु पक्ष के लोगों को) चिढ़ावें (तुम युद्ध में हारे हो आदि वाक्यों से) न दुःख देवें।" अर्थात् सहयोग करें। अश्रद्धा होने पर भी- अश्रद्धया देयम्- सहयोग करना है।

वर्तमान में **"संयुक्त राष्ट्र संघ"** की ओर से भी एक ऐसी सेना संगठित है- जो युद्ध के बाद घायल पड़े हुए सभी लोगों की भेदभाव भुलाकर यथोचित सहायता करती है।

अभी मकर संक्रान्ति पर्व पर लोगों को बिना किसी भेदभाव के आवश्यकतानुसार कम्बल आदि बांटे गये- उसमे भी श्रद्धेय-अश्रद्धेय का भेद नहीं रखा जाता है- सहायता की जाती है।

एक सदस्य बोले- सत्य तो है, जब कहीं अकाल, भूकम्प, महामारी, बाढ़ आदि तथा रेल आदि की दुर्घटना आदि से पीड़ितों की सहायता में श्रद्धा/अश्रद्धा का विचार न करके समान रूप से यथोचित सहायता की जाती है। संभवतः हृदय की विशालता बनी रहे, यह संकुचित न हो, अतः उपनिषत्कार ने 'अश्रद्धयादेयम्' कहा है।

एक और बात यह भी है कि हम जब यज्ञ करते हैं, तब उसकी सुगन्ध तथा उसका लाभ समान रूप से सबके पास अर्थात् तब हमारे मन में श्रद्धेय अश्रद्धेय का भाव न उठकर **'सवे भवन्तु सुखिनः'** के विशाल उद्गार निकलते हैं। इस प्रकार हम हृदय की विशालता कम न हो इस भावना से ही 'अश्रद्धया देयम्' वाली बात कहीं है! वेद का भी आदेश है- पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः" (यजु. २६-५१)

मनुष्य मनुष्य की रक्षा सब प्रकार से करें।

तो आगे 'ह्रिया देयम्' लज्जा से देना चाहिए तथा 'भिया देयम्' डर से देना चाहिए पर विचार करें।

इस पर कल्पना से तथा व्यावहारिक दृष्टि से विचार करते हैं। देखिए, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम किसी सन्त के सत्संग में बैठे हों। सत्संग के अन्त में किसी कार्य के लिए दान माँगा जा रहा था। हमारी इच्छा तो यहाँ कुछ देने की नहीं थी, किन्तु इतने में हमने देखा कि हमारा एक परिचित दान देते समय हमारी ओर ही देख रहा था, मानो वह कह रहा था कि तुमसे कम धनवान् हूँ, फिर भी मैं दे रहा हूँ आप नहीं, हमें लज्जा का अनुभव हो रहा था। अतः हमने भी दान देकर 'ह्रिया देयम्' वाली बात सार्थक की।

इस विषय में और विचार करते हैं। कल्पना करें कि हमारे बेटे का विवाह हुआ। घर में बहु आई थी कि दो दिन बाद ऐसे अवसर पर मांगने वाले शिखण्डी (हिजड़े) आये, आते ही ढोलक बजाकर नाच-गाना करने लगे। उन्हें कुछ न दें या बहुत कम दें, तो बिना संकोच बढ़ा- चढ़ा कर हमारी निन्दा करेंगे। हमारी इस प्रकार निन्दा न हो, हमें लोगों में लज्जित न होना पड़े इस आशा से हमें 'ह्रिया देयम्' वाली बात अपनानी ही पड़ती है।

ऐसे अन्य कई अवसर आते हैं, जहाँ लोग क्या कहेंगे? ऐसा सोचकर शर्म के मारे भी हमें देना ही पड़ता है।

चलिए, थोड़े बहुत अंश में आपने जो कहा वह सही है। हम समाज में रहते हैं- कोई हमारे ऊपर उँगली न उठाये- इस भावना को ध्यान में रखकर 'ह्रिया देयम्' को सार्थक करते हैं। अब आगे 'भिया देयम्' डर से देना चाहिए पर भी विचार कर लें।

कल्पना करें कि एक बार एक 'इन्कम टैक्स ऑफिसर' हमारे पास आकर बोले- हमारे गाँव में एक विद्यालय बनाने का निश्चय किया गया है। तीन कमरों के लिए तो धन प्राप्त हो गया है- एक कमरा आप बनवा दीजिए। अधिक नहीं बीस हजार रुपये आप दे दें, तो चौथा कमरा भी बन जायेगा।

हमने सोचा इस ऑफिसर को हम नहीं देंगे, तो किसी भी समय हमारे आय-व्यय में कुछ कमी निकालकर हमें फंसा ही देगा- तब 'भिया देयम्' की सार्थकता सम्पन्न हुई।

हमारे ही मोहल्ले का एक अत्यन्त दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति अपने कुछ साथियों के साथ दान मांगने आया। पूछने पर विदित हुआ- अमुक मन्दिर पर इस शनिवार को भण्डारा करना है।आपकी ओर से कम से कम पाँच हजार रूपये दान में मिलेंगे, इस आशय से आये हैं।

हमने देखा- उसके बगल की जेब में कट्टा रखे हुए थे। साथ आये साथियों के हाथों में लाठियाँ भी थीं। हमें अच्छी तरह मालूम है इसने जो धन माँगा, नहीं

शेष पृष्ठ २७ पर

अमरीकी शासन की कुछ विशेषताएं

(कृष्ण चन्द्र गर्ग, ८३१/सैक्टर-१० पंचकूला, ')

१.अमेरिका में देश के लिए **राष्ट्रपति**, प्रान्त के लिए **राज्यपाल** तथा नगर के लिए **नगरपालिका अध्यक्ष-** ये सभी सीधे जनता के द्वारा चुने जाते हैं। इसलिए सांसदों को, विधायकों को और पार्षदों को चुनाव के पश्चात् आपसी गठजोड़ करने की या खरीद-बेच करने की जरूरत नहीं पड़ती।

२. विधायिका (Legislative) और कार्यपालिका (Executive) अलग अलग है। संसद विधायिका का काम करती है और राष्ट्रपति के ऊपर कार्यपालिका की जिम्मेदारी है। सांसद तथा राष्ट्रपति सीधे तौर पर देश की जनता के द्वारा चुने जाते हैं। इसलिए उनका अस्तित्व एक दूसरे पर आश्रित नहीं है। इसलिए भ्रष्टाचार नहीं है।

३. सांसद और विधायक- मंत्री, मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री नहीं बनाए जाते और न ही उन्हें कोई और लाभ का पद दिया जाता है। वे सांसद और विधायक ही बने रहते हैं। इसलिए उनका सम्बंध सीधा जनता से रहता है और वे जनता के लिए अच्छी व्यवस्थाएं बनाते हैं।

४. प्रशासन में राष्ट्रपति के सहायक के रूप में सचिव (Secretaries) हैं, जिनकी संख्या १५ निश्चित है। राष्ट्रपति सारे देश में से योग्यता के आधार पर सचिवों का चयन करते हैं। उनकी स्वीकृति सैनेट (संसद का एक सदन) देती है।

५. अपने स्वार्थ के लिए कोई भी चुनाव आगे-पीछे नहीं कर सकता। राष्ट्रपति और संसद के चुनावों की तिथियां संविधान के द्वारा ही निश्चित की हुई हैं।

६. अवधि (Term)- राष्ट्रपति की अवधि चार वर्ष है। कोई भी व्यक्ति दो से अधिक बार राष्ट्रपति नहीं बन सकता।

संसद के एक सदन House of Representatives की अवधि दो वर्ष है तथा दूसरे सदन सैनेट (Senate) की अवधि छः वर्ष है। हर दो वर्ष के पश्चात् सैनेट के एक तिहाई सदस्य नये चुनकर आते हैं।

७. उप-चुनाव (Bye Elections) नहीं होते। राष्ट्रपति का पद खाली होने पर अगले चुनाव तक के लिए उपराष्ट्रपति को राष्ट्रपति बना दिया जाता है। उपराष्ट्रपति का पद खाली होने पर संसद की स्वीकृति से राष्ट्रपति देश में से किसी भी योग्य व्यक्ति को अगले चुनाव तक के लिए उपराष्ट्रपति बना देते हैं।

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव एक जोड़े (Team) के तौर पर होता है, अलग- अलग नहीं।

संसद का कोई स्थान खाली होने पर उसी निर्वाचन क्षेत्र (Constituency) का और उसी राजनैतिक दल का कोई व्यक्ति अगले चुनाव तक के लिए मनोनीत कर दिया जाता है।

संसद भी कभी भी बीच में ही भंग नहीं होती क्योंकि संसद का अस्तित्व किसी प्रस्ताव के पास या फेल होने पर आश्रित नहीं है। इसलिए मध्यावधि चुनाव भी नहीं होते।

८. सांसद या राष्ट्रपति अपने वेतन-भत्ते स्वयं नहीं बढ़ा सकते। इस सम्बन्ध में जब कोई प्रस्ताव पास होता है, वह उस समय के सांसदों या राष्ट्रपति पर लागू नहीं होता। उनकी अवधि पूरी होने पर अगली संसद या राष्ट्रपति पर लागू होता है।

९. देश में कोई भी दिखावे का पद (Ceremonial Office) नहीं है। सभी के लिए पद के हिसाब से काम है तथा उसी हिसाब से वेतन है।

१०. कोई भी अपराधी या आरोपी चुनाव नहीं लड़ सकता। अगर किसी सांसद या विधायक पर कोई आरोप लग जाता है, तो उसे तुरन्त अपना पद छोड़ना पड़ता है।

११. मन्त्रियों के कोटे(Quotas) या सांसद निधि आदि नहीं है। सांसदों, सचिवों, जजों, सरकारी अफसरों आदि को सरकार की तरफ से कार, कोठी, नौकर आदि भी नहीं दिए जाते।

१२. न्यायपालिका पूर्ण रूप से स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष है और शीघ्र न्याय देती है।

१३. साम्प्रदायिकता- किसी भी मजहब के आधार पर देश में कोई भी कानून नहीं है। सभी कानून

समता के आधार पर बने हैं। मजहब सभी के लिए एक निजी और व्यक्तिगत विषय है, राष्ट्रीय या सरकारी विषय नहीं है। किसी भी मजहब को बढ़ावा नहीं दिया जाता। इसलिए साम्प्रदायिक दंगे नहीं होते।

१४. जातपात का नामोनिशान नहीं है। कोई ऊँच-नीच नहीं जानता।

१५. कोई भी किसी प्रकार का भी आरक्षण नहीं है। सभी कुछ योग्यता के आधार पर है। जो जिसके योग्य है, उसे वह काम मिल जाता है। योग्यता बढ़ाने के लिए सभी को अवसर उपलब्ध हैं

१६. शिक्षा- हाई स्कूल अर्थात् १२ वर्ष तक की शिक्षा पूर्णतया निशुल्क है और दस वर्ष तक की शिक्षा सभी लड़के-लड़कियों के लिए अनिवार्य है।

इसलिए जनसंख्या और बेरोजगारी नियन्त्रित है। बाल विवाह और बाल मजदूर नहीं होते।

१७. नौकरी की सुरक्षा (Security of Service) नहीं है। इसलिए लोग मेहनत और इमानदारी से काम करते हैं। रोटी की सुरक्षा (Security of Bread) सबके लिए है।

१८. अमरीकी संविधान- अमेरिका का संविधान १७८७ में बना था। उसमें अब तक कुल २७ संशोधन हुए हैं। मूल संविधान तथा सभी संशोधनों को मिलाकर कुल पच्चीस पृष्ठ की पुस्तिका के आकार का अमेरिका का संविधान है।

अमेरिका की सुव्यवस्था, समृद्धि, उन्नति और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का श्रेय उनके २२१ वर्ष पुराने संविधान को तथा उसे बनाने वालों को ही जाता है।

१९. भाषा- अमेरिका में सैकड़ों भाषाएं बोलने वाले लोग रहते हैं। परन्तु केन्द्र सरकार तथा सभी प्रान्तीय सरकारों की भाषा एक ही है- अंग्रेजी। इसलिए सारा देश एक इकाई के रूप में उभरा है।

२०. मेहनत करने वाला कोई भी व्यक्ति गरीब नहीं है। मेहनत से कोई भी व्यक्ति थोड़े ही समय में अपनी गरीबी दूर कर सकता है। शारीरिक काम करने वालों को मेहनताना दफतरों में काम करने वालों से कम नहीं मिलता।

२१. राजनेताओं के पास कोई व्यक्तिगत अधिकार नहीं होते। इसलिए लोग उनके आगे- पीछे नहीं फिरते। वैसे भी खुशामद करना या गिड़गिड़ाना बहुत बुरा माना जाता है। दफतरों में भी गिड़गिड़ाना नहीं पड़ता। आत्म स्वाभिमान को महत्व दिया जाता है।

२२. अमेरिका में लड़का- लड़की में प्रेमविवाह ही होते हैं। इसलिए दहेज का अभिशाप नहीं है और लड़की माता-पिता पर बोझ नहीं है। बुढ़ापे में पेंशन सबको मिलती है। इसलिए बुढ़ापे में लड़के का सहारा ढूँढना नहीं पड़ता। इन कारणों से लड़का- लड़की दोनों बराबर समझे जाते हैं। कन्याभ्रूण-हत्याएं नहीं होतीं। वहां पर स्त्रियों की संख्या पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा है। ❑❑

पृष्ठ २५ का शेष

दिया, तो यह तोड-फोड़ कर देता है। अतः हमने "भिया देयम्" को सार्थक किया।

एक दिन हमारे वार्ड के एम.एल.ए. साहब अपनी पार्टी के कुछ सदस्यों को लेकर आये। विनम्रता के साथ कहने लगे कि आप हमारी पार्टी के सदस्य तो नहीं हैं, फिर भी हम अपनी पार्टी के लिए आपसे चन्दा मांगने आये हैं। एक हजार रुपये चन्दे में दीजिये- आप समर्थ हैं, इसलिए इतने धन की आशा से हम आपके पास आये हैं। इस समय तो हमारी पार्टी का वर्चस्व है, तो भी हम विन्रमता से आपसे मांग रहे हैं। आशा है आप हमें निराश नहीं करेंगे साथ में आये एक साथी ने दूसरे साथी से धीमे से कहा- नहीं देंगे तो परिणाम भुगतेंगे।

हमने उनकी बात सुनकर 'भिया देयम्' वाली बात को सार्थक किया। इसी प्रकार राजभय से, दुष्टों के भय से तथा किसी उच्च अधिकारी के भय से हमें 'दान' न चाहते हुए भी भय से देना ही पड़ता है।

निष्कर्ष यह है कि सत्य शास्त्रों की बातों को हमें- यह असत्य है, व्यर्थ लिखा है, ऐसे कैसे हो सकता है आदि उपेक्षाभरी या निराशाजनक बातें नहीं करनी चाहिए। अपितु महाभाष्यकार के इस वचन के आधार पर-

"व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्"

अथात् सन्देह मात्र से किसी बात को अन्यथा न समझकर व्याख्यान विशेष से विशेष बात का निर्णय कर लेना चाहिए।

इस आधार पर चिन्तन करने से व्यावहारिक सन्दर्भों से सत्य बातों को प्रत्यक्ष कर सकेंगे। ठीक ही लिखा है- सत्यमेव जयते। ❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७		रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
Post in Delhi R.M.S	अप्रैल 2018	लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
०५-११/०४/२०१८		Licenced to post without prepayment
भार- ४० ग्राम		Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....................
ग्राम.....................
डा0 ....
जिला.....................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।